न होने पाई। बाबू गोपालचन्द्र मेरे पिता बाबू कल्याणदास से लिपट गए। यह बड़े घबराए कि अब दोनों यहीं रहे। परन्तु साहस करके इन्होंने उनको अपने शरीर से छुड़ाकर ऊपर की ओर लोकाया। सौभाग्यवश नौकाएं वहां पहुंच गई थीं, लोगों ने हाथों हाथ उठा लिया। मुकुन्दी बीबी अपनी सोने की सिकरी को हाथ से पकड़े नौकर के गले से चिपटी रही। निदान सब लोग निकल आए, यहां तक कि जितने पदार्थ डूबे थे वे सब भी निकल आए। एक सोने की घड़ी, चाँदी का चश्मे का खाना और बांह पर बांधने का एक चांदी का यन्त्र अब तक उस समय का जल में से निकला हुआ रक्खा है। कविवर गोपालचन्द्र की कवित्वशक्ति उस समय भी स्थगित न हुई और उन्होंने उसी अवस्था में एक पद बनाया जोकि मुझे पूरा स्मरण नहीं है, परन्तु अन्तिम पद उसका यह है—

"गिरिधर दास उबारि दिखायो
भवसागर को नमूना"

चार दिन बुढ़वामङ्गल के अतिरिक्त, होली और अपने तथा पुत्रों के जन्मोत्सव के दिन बड़ा जलसा और बिरादरी की जेवनार कराते थे, कि जिसकी शोभा देखनेवाले अब तक भी वर्तमान हैं, और कहते हैं वैसी शोभा अब अच्छे अच्छे बिबाह की महफ़िलों में भी नहीं दिखाई देती।

एक बेर ये हाथी से भी गिरे थे और उसी दिन उस हाथी को काशिराज की भेंट कर दिया।

गयायात्रा

बचपन से श्रीठाकुर जी की सेवा और दर्शन का ऐसा अनुराग था कि उन्हें छोड़ कर कभी कहीं यात्रा का विचार नहीं करते। केवल पांच वर्ष की अवस्था में मुण्डन कराने के लिये पिता के साथ मथुरा जी गए थे, तथा श्रीदाऊ जी के मन्दिर में मुण्डन हुआ था और वहां से लौट कर श्री वैद्यनाथ जी गए थे, वहां चोटी उतरी थी। स्वतन्त्र होने पर कभी कभी चरणाद्रि श्री महाप्रभु जी के दर्शन को जाते; परन्तु पहिले दिन जाते, दूसरे दिन लौट आते। केवल बाबू हरिश्चन्द्र के जन्मोपरान्त संवत १९०७ में पितृऋण चुकाने के लिये गया गए थे। गया जाने के लिये बड़ी तयारियां हुईं। महीनों पहिले से सब पुराणों, धर्मशास्त्रों से छांट कर एक सङ्ग्रह बनाया गया। रेल थी नहीं, डांक का प्रबन्ध किया गया। सैकड़ों आदमियों का साथ था। पन्द्रह दिन की गया का विचार करके गए, परन्तु वहां जाने पर प्रभुवियोग ने विकल किया। दिन रात रोवें, भोजन न करें, सेवा का स्मरण अहर्निशि रहै। निदान किसी किसी तरह तीन दिन की गया करके भागे। रात दिन बराबर चले आए और आकर श्रीचरणदर्शन से अपने को तृप्त किया। इस यात्रा में मेरी माता साथ थीं।

ग्रन्थ

इनका सबसे पहिला ग्रन्थ वाल्मीकि रामायण है, जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है। परन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि इनके ग्रन्थ ऐसे अस्त व्यस्त हो गए हैं कि जिनका कुछ पता ही नहीं लगता। केवल पूज्य भारतेन्दु जी के इस दोहे से

"जिन श्रीगिरिधर दास कवि रचे ग्रन्थ चालीस
ता सुत श्रीहरिचन्द्र को को न नवावै सीस"।

इतना पता लगता है कि उन्होंने चालीस ग्रन्थ बनाए थे, परन्तु उनके नाम या अस्तित्व का पता नहीं लगता।

पूज्य भारतेन्दु जी ने अपनी याददाश्त में इन ग्रन्थों के नाम लिखे हैं—

१ वाल्मीकि रामायण (सातों कांड छन्द में अनुवाद)। २ गर्गसंहिता। ३ भाषा एकादशी की चौबीसों कथा। ४ एकादशी की कथा। ५ छन्दार्णव। ६ मत्स्यकथामृत। ७ कच्छपकथामृत। ८ नृसिंहकथामृत। ९ बावनकथामृत। १० परशुरामकथामृत। ११ रामकथामृत। १२ बलराम कथामृत। १३ बुद्धकथामृत। १४ कल्किकथामृत। १५ भाषा व्याकरण। १६ नीति। १७ जरासन्ध बधमहाकाव्य। १८ नहुषनाटक। १९ भारती-

भूषण। २० अद्भुत रामायण। २१ लक्ष्मी नख सिख। २२ रसरत्नाकर। २३ वार्ता संस्कृत। २४ ककारादि सहस्रनाम २५ गयायात्रा। २६ गयाष्टक। २७ द्वादश दलकमल। २८ कीर्तन की पुस्तक "स्तुति पञ्चाशिका" की कवि सरदार कृत टीका का वर्णन ऊपर हो चुका है। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित संस्कृत स्तोत्रों पर संस्कृत टीका कवि लक्ष्मीराम कृत मुझे मिली है—

१ सङ्कर्षणाष्टक। २ दनुजारिस्तोत्र। ३ वाराहस्तोत्र। ४ शिवस्तोत्र। ५ श्री गोपालस्तोत्र। ६ भगवत्स्तोत्र। ७ श्री रामस्तोत्र। ८ श्री राधास्तोत्र। ९ रामाष्टक। १० कालियकालाष्टक। इनके ग्रन्थों के लुप्त होने का विशेष कारण यह जान पड़ता है कि इनके अक्षर अच्छे नहीं होते थे, इसलिये वे स्वयं पुर्ज़ों पर लिख कर या लेखकों से लिखवा कर फिर उनको हज़ारों रुपए लगा कर सुन्दर अक्षरों में नकल लिखवाते और सुन्दर चित्र बनवाते थे। तब मूल कापी का कुछ भी यत्न न होता और ग्रन्थ का शत्रु वही उसका चित्र होता। मैंने बाल्मीकि-रामायण और गर्गसंहिता की सचित्र कापी बचपन में देखी थी, परन्तु उसे कोई महाशय पूज्य भारतेन्दु जी से ले गए और फिर उन्होंने इसे न लौटाया। कीर्तन की पुस्तक मुन्शी नवल किशोर के प्रेस से खो गई और "नहुषनाटक" का कुछ भाग "कविवचनसुधा" प्रथम भाग में छप कर लुप्त होगया। खेद है कि पूज्य भारतेन्दु जी की असावधानी ने इनको बहुत हानि पहुंचाई।

दशावतार कथामृत मानो उन्होंने भाषा में पुराण बनाया था। पुराण के सब लक्षण इसमें हैं। बलिरामकथामृत बहुत ही भारी ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ सं० १९०६ से १९०८ तक में पूरा हुआ है। भारतीभूषण अलङ्कार का अद्भुत ग्रन्थ है। अच्छे अच्छे कवि अपने विद्यार्थियों को यह ग्रन्थ पढ़ाते हैं। नहुषनाटक भाषा का पहिला नाटक है। भाषा व्याकरण-छन्दोबद्ध भाषा का व्याकरण अत्यन्त सुगम और सरल ग्रन्थ है। जरासन्धबध महाकाव्य और रसरत्नाकर अधूरे ही रह गए। इन दोनों को पूज्य भारतेन्दु जी पूरा करना चाहते थे, परन्तु खेद कि वैसा ही रह गया। जरासन्धबध महाकाव्य बहुत ही पाण्डित्य पूर्ण वीररसप्रधान ग्रन्थ है। भाषा में यह ग्रन्थ एम० ए० का कोर्स होने योग्य है। इसकी तुलना के भाषा में बिरले ही ग्रन्थ मिलेंगे। इस ढङ्ग का ग्रन्थ केवल कविवर केशवदास कृत रामचन्द्रिका ही है।

कविता

इनकी कविता पाण्डित्यपूर्ण होती थी। इन्हें अलङ्कारपूर्ण श्लेष, जमक इत्यादि कविता पर विशेष रुचि थी। परन्तु नीति, शृङ्गार और शान्त रस की कविता इनकी सरल और सरस भी अत्यन्त ही होती थी। हम उदाहरण के लिये कुछ कविताएं यहां उद्धृत करते हैं—

सवैया—रुब केसब केसब केसब के हित के गज सोहते सोभा अपार हैं। जब सैलन सैलन सैलन ही फिरै सैलन सैलहिं सीस प्रहार हैं। गिरिधारन धारन सों पद के जलधारन लै बसुधारन फार हैं। अरि बारन बारन बारन पै सुह बारन बारन बारन बार हैं॥ १॥

मुकरी—अति सरसत परसत उरज उर लगि करत बिहार। चिन्ह सहित तन को करत क्यों सखि हरि नहिं हार॥ १॥

संख्यालंकार—गुरुन को शिष्यन पात्र भूमि देवन को मान देहु ज्ञान देहु दान देहु धन सों। सुत को सन्यासिन को बर जिजमानन कों सिच्छा देहु भिच्छा देहु दिच्छा देहु मन सों। सत्रुन को मित्रन को पित्रन कों जग बीच तीर देहु छीर देहु नीर देहु पन सों। गिरिधर दास दासै स्वामी को अघी को आसु रुख देहु सुख देहु दुख देहु तन सों॥

यथासंख्य—असतसङ्ग, सतसङ्ग, गुन, गङ्ग, जङ्ग कहं देखि। भजहु, सहजु, सीखहु सदा, मज्जहु, लरहु बिसेखि॥

अविकृतशब्द श्लेष मूल वक्रोक्ति—मानिक हौ रमनी सु लैहैं परसत तुव पाय। मानिक हार मनौ सु लै देहु पतुरियै जाय ॥ १ ॥ मानत जोगहि सुमति बर पुनि पुनि होति न देह। जोगी मानहिं जोग के नहिं हम करत सनेह ॥ १ ॥

स्वभावोक्ति—गैानो करि गैानो चहत पिय विदेस बस काजु। सासु पासु जोहत खरी आंखि आंसु उर लाजु ॥ १ ॥

समस्या पूर्ति—जीवन मैं सगरे जग के हमतें सब पाप औ ताप को हानी। देवन कें अरु पितृन कें नरकें जड़कें हमहीं सुखदानी॥ जे हम ऐसो कियो तेहि नीच महा सठके मति लै अघसानी। हाय विधाता महा कपटी इहि कारन कूप मैं डोलत पानी ॥ १ ॥ बातन क्यों समुझावति है मोहि मैं तुमरो गुन जानति राधे। प्रीति नई गिरिधारनसों भई कुंज मैं रीति के कारन साधे॥ घूँघट नैन दुरावन चाहति दैारति सो दुरि ओट ह्वै आधे। नेह न गोयो रहै सखि लाज सों कैसे रहै जल जाल के बांधे ॥ १ ॥

जरासन्धबध महाकाव्य से—चले राम अभिराम राम इष धनु टंकारत। दीनबन्धु हरिबन्धु सिन्धु सम बल बिस्तारत॥ जाके दशसत सिरन मध्य इक सिर पर धरनी। लसति जथा गज सीस स्वल्प सरसप सित बरनी॥ विक्रम अनंत अंतक अधिक सुजस अनंत अनंत मति। परताप अनंत अनंत गुन लसे अनंत अनंत गति ॥ १ ॥

पद—प्रभु तुम सकल गुन के खानि। हैा पतित तुव सरन आयो पतित पावन जानि॥ कब कृपा करिहैा कृपानिधि पतितता पहिचानि। दास गिरिधर करत बिनती नाम निश्चै आनि ॥ १ ॥

खड़ी बोली का पद—जाग गया तब सोना क्या रे। जो नर तन देवन के दुर्लभ सो पाया अब रोना क्या रे॥ ठाकुर से कर नेह अपाना इन्द्रिन के सुख होना क्या रे। जब बैराग ज्ञान उर आया तब चांदी औ सोना क्या रे॥ दारा सुअन सदन मैं [illegible] भार सबों का ढोना क्या रे। हीरा हाथ अमोलक पाया कांच भाव में खोना क्या रे॥ दाना जो मुख मांगा देवे तब कैाड़ी भर दोना क्या रे। गिरिधर दास उदर पूरे पर मीठा और सलोना क्या रे ॥ १ ॥

विदुर नीति से—पावक, बैरी, रोग, रिन सेसहु राखिय नाहिं। ए थोड़े हू बढ़हिं पुनि महाजतन सों जाहिं ॥ १ ॥

बाल्मीकिरामायण से—पति देवत कहि नारि कहं और आसरो नाहिं। सर्ग सिढ़ी जानहु यही वेद पुरान कहाहिं ॥ १ ॥

नीति के छप्पय (स्वहस्त लिखित एक पुर्जे से)—धिक नरेस बिनु देस देस धिक जहं न धरम रुचि। रुचि धिक सत्य विहीन सत्य धिक बिनु बिचार सुचि॥ धिक बिचार बिनु समय समय धिक बिना भजन के। भजनहुं धिक बिनु लगन लगन धिक लालच मन के॥ मन धिक सुन्दर बुद्धि बिनु बुद्धि सुधिक बिनु ज्ञान गति। धिक ज्ञान भगति बिनु भगति धिक नहिं गिरिधर पर प्रेम अति ॥ १ ॥

मुझे खेद है कि न तो मैंने इनके सब ग्रन्थों को पढ़ा है और न इतना अवसर मिला कि उत्तमोत्तम कविता छांटता। यत्किञ्चित उदाहरण के लिये उद्धृत कर दिया है और चित्रकाव्य को छापने की कठिनता से सर्वथा ही छोड़ दिया है ॥

रोग और मृत्यु

बचपन से लोगों ने उन्हें भङ्ग पीने का दुर्व्यसन लगा दिया था। वह अति को पहुंच गया था और अन्त में इसीके कारण उन्हें जलोदर रोग हो गया। बहुत कुछ चिकित्सा हुई, परन्तु कोई फल न हुआ। सं० १९१७ की वैशाख सु० ७ को अन्त समय आ उपस्थित हुआ। पूज्य भारतेन्दु जी और उनके छोटे भाई बाबू गोकुलचन्द्रजी को सीतला जी का प्रकोप हुआ था। दोनों पुत्रों को बुलाकर देखकर बिदा किया। इन लोगों के हटते ही प्राण पखेरू ने पयान किया। चारों ओर अन्धकार छा गया, हाहाकार मचगया। पूज्य भारतेन्दु जी कहते थे कि " वह मूर्ति अब तक मेरी आंखों के सामने विराजमान है।

तिलक लगाए बड़े तकिए के सहारे बैठे थे। दिव्य कान्ति से मुखमण्डल दीप्त था, मुख प्रसन्न था, देखने से कोई रोग नहीं प्रतीत होता था। हम लोगें को देखकर कहा कि सीतला ने बाग मोड़ दी। अच्छा अब ले जाव।" इनकी अन्त्येष्टि क्रिया एक सम्बन्धी (नन्हूसाव) ने की थी।

श्री राधाकृष्णदास।

अङ्गरेज़ी भाषा की उन्नति का संक्षिप्त इतिहास।

[गत अंक के आगे]

ऐंग्लोसैक्सन पुस्तकों में से कोई भी इस समय के लिये विशेष उपयोगी नहीं। कुछ ग्राल्हा बिरहा की सी काव्य की पुस्तकें हैं, विशेषतः धर्म सम्बन्धी ग्रैार कुछ झूठ सच मिले हुए इतिहास की! बस। परन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है कि अंग्रेज़ों की पुण्यभूमि में देशानुरागी प्रजापालक पहिला राजा अलफ़्रेड हुआ ग्रैार उसने मातृभाषा की उन्नति, देशोन्नति के लिये, आवश्यक समझी ग्रैार उसमें पुस्तकों का अनुवाद करके उसने ग्रैारों का उत्साह बढ़ाया। इस बात को जानकर हमारे उन अंग्रेज़ी या संस्कृत विद्या के विद्वानों को लज्जा ग्रानी चाहिए, जो देशानुरागी बनते हैं ग्रैार उन्नति का दम भरते हैं। परन्तु मातृभाषा की पुस्तकों की ग्रोर देखना हो—भला उन्हें पढ़ने ग्रैार इस भाषा में पुस्तकें लिखने की कैान कहे—एक अप्रतिष्ठा समझते हैं। जैसे हमारे देश में सब शिक्षा अंग्रेज़ी ही में दी जाती है वैसे ही सैकड़ों वर्ष तक केवल इंग्लैंड ही में नहीं, वरन यूरप के सभी देशों में, सब शिक्षा लैटिन में होती थी। लेकिन देश के सच्चे हितैषी मातृभाषा में पुस्तकें रचना अपना कर्तव्य ग्रैार गैारव समझते थे। इसी पुण्य प्रभाव से अंग्रेज़ों के राज्य में आज दिन सूर्य अस्त नहीं होता।

हमारे कुछ शिक्षित भाई कहते हैं कि अच्छा किताबें तो लिखें; लेनेवाला कैान है? यह सुन कर कुछ तो हंसी आती है, कुछ शोक होता है। क्या अलफ़्रेड राजा ने भी यह सोचा था कि किताबों से उन्हें क्या मिलेगा। ऐश व आराम से राज्य न करें! अलफ़्रेड राजा ही क्या? प्राचीन काल में किताबों की बिक्री होती कहां थी? क्या रुपए के लालच के सिवा हम किसी ग्रैार सबब से अपना समय अच्छे काम में नहीं लगा सकते? सब यूरोपीय देशों का इतिहास स्पष्टरूप से बता रहा है कि दरिद्र ग्रैार दुःख दूर करने का एक मात्र उपाय विद्या है ग्रैार हमारे गरीब भाइयों को बिना मातृभाषा के विद्या कैसे प्राप्त हो सकती है? अगर हम स्वार्थपरता की इतनी पराकाष्ठा को पहुंच गए हैं कि दूसरे की भलाई के लिये काम करना पाप समझते हैं, तो क्या अपनी बुद्धि का चमत्कार दिखाने में भी कुछ आनन्द नहीं होता? क्या कीर्ति वा नाम के लिये श्रम करने में भी आनन्द नहीं होता, कि जैसा आजकल अलफ़्रेड ऐसे राजाओं का नाम आदर पूर्वक लिया जाता है वैसेही सैकड़ों वर्ष बाद हमारा भी लिया जाय? कोड़े मकोड़े पैदा होते हैं; कुछ दिन जीते हैं; फिर मर जाते हैं। क्या ऐसाही मनुष्य का भी कर्तव्य है कि उसका दुनिया में आना न आना दोनों एकसा रहे! दूसरों की भलाई के लिये प्रयत्न करने से ज्यादा ईश्वर को कोई भी बात प्रिय नहीं। अगर ऊपर कहे हुए विचारों में से कोई भी हमारी सोती बुद्धि को नहीं जगाता तो हमें अंग्रेज़ों को दोष न लगाना चाहिए। जितना उन्होंने उपकार किया है उसके भी हमारे सदृश स्वार्थान्ध लोग पात्र नहीं। जो स्वयं दूसरों की कुछ परवाह नहीं करते, उनको परवाह कोई क्यों करे, जीएं या मरें।

डेन लोग—सैक्सन राज्यकाल के बीच ही में डेन लोगों के इंग्लैन्ड पर हमले शुरू हुए। यह लोग डेन्मार्क नार्वे ग्रैार स्वीडन के निवासी थे [illegible] ों के

बाद गोथा यही समुद्र के राजा हुए। यह लोग बड़े निर्दयी थे। गिर्जाघर और सन्यासियों के मठ तक ये जलादेते और लोगों को मार डालते। अलफ्रेड राजा ने इनको रोकने का अच्छा इन्तज़ाम किया था, परन्तु उसके मरने पर फिर इन लोगों के अत्याचार आरम्भ हुए। अन्त में इन्होंने राज्य छीन लिया। इनके ३ राजा हुए और केवल २४ वर्ष राज्य रहा। इनके अनन्तर फिर सैक्सन राजा के सन्तानों में से एक को राज्य प्राप्त हुआ। जब डेन लोगों का राज्य हुआ तब सैक्सन राजा फ्रांस के नारमण्डी प्रान्त के डयूक के यहां जा बसा था। इंगलेण्ड की अपेक्षा यह देश बहुत सभ्य और धनवान था। यह अन्तिम राजा २७ वर्ष वहां रहने के कारण बहुत कुछ बदल गया था। इनके ज़माने में फ्रांसीसी विद्वानों की बड़ी प्रतिष्ठा थी और उच्चपद विशेषतः फ्रांसीसी लोगों ही को मिलते थे। यह द्वितीय सैक्सन राज्यकाल २५ वर्ष रहा। सैक्सन राजा की मृत्यु पर विलियम, नारमण्डी के ड्यूक ने यह प्रगट करके कि सैक्सन राजा ने उसे अपना उत्तराधिकारी बनाया है, इंग्लैण्ड पर आक्रमण किया। एक युद्ध हुआ जिसमें विलियम की जय हुई और नार्मन राज्य प्रारम्भ हुआ। यह घटना १०६६ में हुई। द्वितीय सैक्सन राज्यकाल में या डेनों के ज़माने में विद्या और उन्नति सम्बन्धी कोई विशेष बात नहीं हुई। नार्मन राज्य का वृत्तान्त अब दिया जायगा।

ऊपर कहे हुए सैक्सनों को परास्त करने वाले विलियम महाशय वही हैं जिनकी सन्तान आज तक इंग्लैण्ड में राज्य कर रही है। केवल इंग्लैण्ड क्या, उनका राज्य पृथिवी के एक तिहाई हिस्से पर है। यही विलियम हमारे परम प्रशंसनीय महाराजा सप्तम ऐडवर्ड के पूर्वज थे।

अब हम उस समय तक आ पहुंचे हैं जिनके पीछे अंगरेज़ों को किसी अन्य देशीय का शासन नहीं स्वीकार करना पड़ा। इस कारण यह कहना अयुक्त न होगा कि उनकी उन्नति, विद्या, धन, सभी उनके परिश्रम का फल है। इस छोटे से लेख में केवल विद्या और मातृभाषा की उन्नति का हाल दिया जायगा। सब इतिहासों से विदित है कि बिना विद्या की उन्नति के कोई उन्नति नहीं हो सकती और बिना मातृभाषा की उन्नति विद्या का प्रचार नहीं हो सकता।

१०६६ ई०, अर्थात् जब से नार्मन राज्य हुआ, तब से अब तक ८३५ वर्ष हुए। इस समय को विद्या और मातृभाषा की उन्नति के लिहाज़ से ४ कालों में विभक्त कर सकते हैं।

१–१०६६ से १३५०–२८४ वर्ष
२–१३५० से १५५०–२०० वर्ष
३–१५५० से १७००–१५० वर्ष
४–१७०० से अजकल तक

अब एक एक का वृत्तान्त अलग अलग दिया जायगा।

प्रथम काल (१०६६ से १३५०)

इस काल के इंग्लैण्ड के राजा को विदेशी समझना चाहिए। स्कूलों में नार्मन फ्रेंश्च पढ़ाई जाती थी; कचहरियों में भी यही बोली जाती थी। इसीमें कानून बनते थे। इसीमें वकील मिसलें लिखते थे और इसी को क्रूर्जी (ईसाई पादरी) अपने व्याख्यानों में प्रयोग करते थे। फ्रांसीसी पहनाव हुआ। उच्चपद सब नार्मनों को ही मिलते थे। सैक्सनों की भाषा और सैक्सनों से यह लोग घृणा करते थे।

इस ज़माने में बहुत सी पुस्तकें लैटिन में लिखी गईं। कुछ नार्मन फ्रेंच में भी हैं। काव्य, ईसाई धर्म और इतिहास–इन्हीं विषयों पर पुस्तकें हैं। इस समय के अन्तिम भाग में कुछ पुस्तकें ऐसी बनीं जिन्हें सैक्सन-फ्रेंच में लिखी कहना चाहिए। विशेषतः यह नार्मन फ्रेंच से अनुवाद की गई थीं। इनके द्वारा बहुत से फ्रेंच लैटिन शब्द अंग्रेज़ी में प्रचलित हुए और इस प्रकार अंग्रेज़ी भाषा का भण्डार पुष्ट हुआ। ये पुस्तकें देशानुरागी महात्माओं की बनाई हुई थीं। क्रमशः कुछ सैक्सन

लोगों ने नार्मन स्कूलों में शिक्षा पाई और उन्होंने अपने और देशवासियों को विद्यालाभ पहुंचाने का विचार किया। यह स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति को न इतना अवसर है न इतना उत्साह कि अन्य देशीय भाषा में प्रवीण हो; इसी विचार से नार्मन-फ्रेंच का अंगरेज़ी में अनुवाद होने लगा। जिस शब्द के लिये सैक्सन शब्द न मिला, उसके लिये वही फ्रेंच शब्द रख दिया। इस प्रकार पुस्तकें आधी सैक्सन, आधी फ्रेंच अथवा सैक्सन-फ्रेंच में बनीं। इससे हमें बहुत लाभकारी शिक्षा मिलती है। भाषाकोष पूरा करने के निमित्त अनुवाद करना पहिली आवश्यकता है। जर्मन, फ्रेंच, अंगरेज़ी इत्यादि जितनी आधुनिक भाषाएं हैं, सबके इतिहासों से यही बात स्पष्ट है।

सैक्सनों की अपेक्षा नार्मन लोग ज्यादा सभ्य थे। खाने में इन्होंने भेड़ बकरी इत्यादि के मांस की प्रथा चलाई। वस्त्र इनके सैक्सनो से अधिक महीन और सुन्दर होते थे। मकान भी ईंटों के बनने लगे। धनवान नार्मन लोग लकड़ी की चारपाइयों पर सोते थे, सैक्सन लोगों की नाईं ज़मीन पर नहीं। मेज़ कुर्सी का भी कुछ कुछ प्रचार हुआ। परन्तु याद रखना चाहिए कि यह अमीरों का हाल था। अधिकांश प्रजा तो उसी पुराने ढंग पर चली जाती थी।

ऊपर लिखे वृत्तान्त से मालुम होगा कि इस काल में उन्नति कम हुई। सो ठीक है। सामाजिक उन्नति कम हुई। राजनैतिक बातों के लिखने से लेख बहुत बढ़ जायगा। इस समय का मुख्य काम यह हुआ कि सैक्सन, डेन और नार्मन, इन तीनों के वैर विरोध को क्रमशः कम करके एक क़ौम बनी। जब तक पहिले सब एक क़ौम न हो जाते, उन्नति कैसे होती। सो मानो यह उन्नति के मार्ग की पहिली बहुत आवश्यकीय मंज़िल तै हुई।

द्वितीय काल (१३५० से १५५०)

अंग्रेज़ों के इतिहास का यह बड़ा ही गौरवास्पद काल है। अंग्रेज़ क़ौम का इसे बालपन कहना चाहिए। जिस जातीय एकता का पहिले कहे हुए काल में जन्म हुआ था, उसकी इसीमें पुष्टि हुई। साथ ही साथ अंग्रेज़ी भाषा का भी जन्म हुआ। अंग्रेज़ों के राजा तृतीय एडवर्ड और फरांसीसी राजा से घोर युद्ध हुआ। इस युद्ध का परिणाम यह हुआ कि विलियमवंशीय नार्मनों को अपनी सैक्सन प्रजा का सहारा लेना पड़ा और इस प्रकार क़ौमी एकता को बड़ी सहायता पहुंची।

इसी काल के आरम्भ ही में विकलिफ़ ने बाइबिल का अंग्रेज़ी में अनुवाद करके अंग्रेज़ी गद्य की, और चासर ने अपनी काव्य रचनाओं से अंग्रेज़ी पद्य की नीव डाली। कचहरियों में अंग्रेज़ी का चलन चला। वकीलों की वक्तृताएं और पादरियों के उपदेश अंग्रेज़ी में होने लगे। इस समय पुस्तकें विशेषतः दो ही विषयों पर लिखी गईं। एक काव्य, दूसरे धर्मसम्बन्धी। परन्तु काव्यरचना में समस्यापूर्ति या गज़लों की धूम न थी। किन्तु सुन्दर सुन्दर किस्से और और भाषाओं से अनुवाद किए गए। लैटिन और फ्रेंच पुस्तकों में से अधिकांश का अनुवाद हुआ और एक एक नहीं बल्कि एक एक पुस्तक के कई एक अनुवाद हुए। इतिहास का कुछ हाल भी पद्य में लिखागया। अंग्रेज़ों का पुराना इतिहास, (क्रानिकल) जो अब तक लैटिन में लिखाजाता था, अंग्रेज़ी में लिखा जाने लगा। ईसाइयों के कैथलिक और प्रोटेस्टैण्ट के मतविरोध के कारण छोटी छोटी पुस्तकों और व्याख्यानों की बौछार रही। काव्य, इतिहास और ईसाईधर्म, इन विषयों के सिवाय और विषयों की पुस्तकें लैटिन ही में लिखी जाती थीं। इस काल में छापे की कल के ईजाद होने से विद्या वृद्धि को बड़ी सहायता पहुंची। इसी काल में बहुत से उन स्कूलों और कालिजों की बुनियाद डाली गई जो आज तक इंग्लैण्ड में वर्तमान हैं। धनी लोग जो पहिले गिरजाघर इत्यादि बनवाते थे या आलसी साधु सन्तों को खिलाते थे, इन स्कूलों के लिये रुपया छोड़ जाने

लते। हमारे देश की आधुनिक दशा बहुत कुछ इस काल की अवस्था से मिलती जुलती है।

तृतीय काल १५५० से १९००

चासर और विकलिफ की अंग्रेज़ी में और आजकल की अंग्रेज़ी में कुछ भेद है, इसलिये वह पुरानी अंग्रेज़ी कहाती है। उसमें बहुत कुछ सैक्सन व्याकरण के रूप पाए जाते हैं जो आजकल नहीं मिलते। बदलते बदलते इसमें अंग्रेज़ी अपने आधुनिक रूप को प्राप्त हुई। यह अंग्रेज़ी इतिहास का सबसे प्रसिद्ध काल है। इसीमें महाकवि शेक्सपियर और मिलटन; बड़े भारी ज्ञानी बेकन और विज्ञान के जन्मदाता न्यूटन हुए। धर्मसम्बन्धी विषयों पर बड़े विद्वान हुकर ब्रौन, जिरमी टेलर इत्यादि ने पुस्तकें लिखकर सुन्दर अंग्रेज़ी गद्य साहित्य की नाव डाली। न्यूटन के अतिरिक्त विलकिन्स, गिलबर्ट, हार्वे इत्यादि ने विज्ञान की जड़ जमाई। बहुत से नाम गिनने से क्या लाभ। संक्षेपतया, १५५० से पहिले तो अंग्रेज़ी लेखकों के मुख्य विषय तीन थे—काव्य, धर्म, इतिहास। अब तीन विषय और मिले—नाटक, राजनीति और विज्ञान। इसमें धर्मसम्बन्धी वाद विवाद बहुत कम हुआ और राजनैतिक वाद विवाद भी आरम्भ हुआ।

यह पढ़के अत्यानन्द होता है कि कवियों में से अधिकांश उच्चशिक्षा पाए हुए आक्सफ़ोर्ड केम्ब्रिज के से प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों के एम. ए. थे। मिलटन ने एम. ए. होने के बाद ग्रीक फ्रेंच और इटालियन में अभ्यास बढ़ाया था। इन लोगों ने हमारे अभागे देश के बहुत से कवियों की तरह समस्या पूर्ति ही को अपना कर्तव्य न समझा, न नायिका-भेद को कविता का अन्त माना।

न्यूटन और बेकन ने अपने उमदा से उमदा ग्रन्थ लैटिन में लिखे। विज्ञान की पुस्तकें प्रायः लैटिन ही में लिखी जाती थीं। अंग्रेज़ी की इतनी उन्नति पर भी समझा जाता था कि वह ऐसे गुरु विषयों के योग्य नहीं है।

इस काल के अन्त में रायल सोसाइटी नामक एक समाज विज्ञान की उन्नति के लिये स्थापित हुई। वह आज तक वर्तमान है और अपना कर्तव्य बड़ी योग्यता से पूरा कर रही है।

इस कालके वृत्तान्त में एक बात और ध्यान देने योग्य यह है कि लेखकों में से कुछ तो अति दरिद्र थे; दो तीन ने कारागृह में पुस्तकें लिखीं। धनवान भी थे, परन्तु थोड़े। इन लोगों के चित्त में विद्यानुराग पैदा करने का केवल द्रव्य ही एक कारण न था। अंग्रेज़ी इतिहास के हर काल में बेकन सदृस अनेक ऐसे लोग गिनाए जा सकते हैं जो जन्म भर विद्योपार्जन और ग्रन्थरचना ही करते रहे, परन्तु किसी लोभ से नहीं। स्काट सदृस बहुत से ऐसे हुए हैं जो धनलाभ करनेवाला पेशा छोड़ विद्या की सेवा में लगे रहे। भारतवर्ष में तो लोगों ने किसी प्रकार हम इमतिहान पास किया, पेट में दाना गया और विद्या को तिलाञ्जलि मिली। बिलायत में अनेक धनी जो स्वयं ग्रन्थ रचना नहीं कर सकते थे, विद्यानुरागी जनों को धनसहायता पहुंचाना अपना धर्म समझते थे और अब भी ऐसा ही है। न जानें कितनी छात्रवृत्तियां, कितने कालिज, कितने पुस्तकालय इत्यादि इसी तरह स्थापित किए गए और किए जाते हैं। अभी हाल ही में एक करोड़पति सौदागर करनेजी ने स्काटलैण्ड में विद्यावृद्धि के निमित्त तीन करोड़ रुपए दिए हैं। तीन करोड़! ज़रा ध्यान तो दीजिए। इसके सिवाय कितने होनहार युवकों को निज के तौर पर धनवानों से सहायता मिलती रही है। शेक्सपियर के आश्रयदाता इसेक्स थे। बेकन को उनके बाप के मर जाने पर उनके चचा ने उच्च से उच्च शिक्षा दी। मिलटन का विद्यानुराग जानकर उनके बाप ने उनके एम. ए. पास होने पर भी किसी नौकरी इत्यादि का अनुरोध न किया, किन्तु अपने स्वयं उपार्जित धन से ऐसा प्रवन्ध कर दिया कि जन्म भर निःशंक विद्याकी सेवा में लड़का

लगा रहे। बाईस वर्ष के एक मित्र ने अपने मरते समय इतना धन छोड़ दिया कि वह बिना कष्ट काव्यरचना में लगे रहें। इसी प्रकार के सैंकड़ों उदाहरण हैं। इस देश में तो लड़का परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ और उसके मा बाप, भाई बन्धु, उससे पूछने लगे "कोई नौकरी मिली?" यदि परीक्षा के पीछे भी कहीं पुस्तक हाथ में देखली तो कुटुम्बी और मित्र सभी उसे विक्षिप्त समझते हैं। क्या इसी प्रकार देश का कल्याण होगा? इसीसे उन्नति की आशा है? जिस जाति में ऐसे महात्मा पैदा होते हैं कि विद्या की सेवा में धन लगाना अपना परम कर्तव्य समझते हैं, वेही धनी होने के योग्य हैं।

इसी काल में राजा की ओर से बाइबिल का अनुवाद हुआ और लैटिन बाइबिल की जगह अंग्रेज़ी बाइबिल इस्तेमाल होने लगी। ब्याह के समय प्रतिज्ञाएं जो लेटिन में पढ़ी जाती थीं वह अंग्रेज़ी में पढ़ी जाने लगीं। सब धर्मसम्बन्धी कार्रवाई अंगरेज़ी ही में होने लगी। छापेखाने की कृपा से और अंगरेज़ों के धर्मानुराग के कारण बाइबिल घर घर पढ़ी जाने लगी और उसपर वादविवाद होने लगा। वह समय गया जब लोग अपना धर्म जान ही न सकते थे; जो अटायं सटायं पुरोहितों ने बताया, वही ईश्वरवाक्य हो गया। इसी ज़माने से कांटा छुरी से खाना, धनी लोगों के घरों में चटाई, दरी, अच्छी अच्छी मेज़ कुर्सियों का प्रचार, तथा तसवीरों का लगाना इत्यादि आरम्भ हुआ।

१७०० के पश्चात्।

इंग्लैण्ड में विद्या की आधुनिक दशा इस छोटे से लेख में पूर्णतया वर्णन करना नितान्त असम्भव है। तथापि कुछ थोड़ा सा हाल लिखा जाता है। पहिले देखना चाहिए कि कौन से नए विषय अंग्रेजी भाषा और साहित्य में शामिल हुए।

१७०० से पहिले अंग्रेज़ी में उपन्यासों का शायद नाम भी मुश्किल से मिलता; आज कल उपन्यासों की बिक्री प्रतिदिन लाखों की संख्या को पहुंचती है। पहिले लेखक डानियाल डिफो थे। १७२१ में इनका पहिला उपन्यास राबिन्सन क्रूसो निकला। उस समय से अंग्रेज़ी उपन्यासलेखकों की गणना की जाय तो सैकड़ों की नौबत आवे। परन्तु इनमें से कोई १२,१३ उत्तम समझे जाते हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि बहुधा इनमें से ऐसे हुए हैं जो लैटिन, ग्रीक के सिवाय फ्रेंच, इटालियन, जर्मन, स्पेनिश इत्यादि भाषाएं भी जानते थे।

विद्या की दूसरी शाखा जो इस ज़माने में परम उन्नति को प्राप्त हुई, वह इतिहास है। पहिले के इतिहासों में, जो क्रानिकल कहलाते हैं, सत्य असत्य का कुछ विचार ही नहीं। वास्तविक घटनाएं और कही सुनी कथाएं, सब एकही प्रकार लिखी गई हैं। आर्थर राजा के १२ साथियों की असम्भव कीर्तियां उसी प्रकार माननीय समझी जाती थीं जैसे नेलसन या वेलिङ्गटन की फरांसीसियों पर जय। आर्थर की जादू की ढाल तलवार इत्यादि का हाल बड़ी गम्भीरता और तफ़सील से लिखा है। यही क्या; जगह जगह पर असम्भव बातें भरी हैं। इससे पहिले के ज़माने में मिलटन ने क्रानिकलों के आधार पर एक इतिहास लिखना चाहा था, परन्तु थोड़ा लिखने के बाद ही उसने उसे छोड़ दिया। पहिला अच्छा इतिहास डेविड् ह्यूम का अट्ठारहवीं शताब्दी के मध्य में निकला। सत्य के प्रेमियों ने बहुत सी भाषाएं पढ़ के, अनेक देशों में पर्यटन करके और बहुत परिश्रम के साथ, जिसका यहां बयान करना कठिन है, वह सिद्धान्त निश्चय किए जिनके अनुसार लिखी हुई घटनाओं के सत्यासत्य का निर्णय हो सके। अंग्रेज़ी में दुनिया भर की सभी कौमों का इतिहास मिलेगा। इतिहास के उत्तमोत्तम ग्रन्थ सब इसी शताब्दी में बने हैं और जान पड़ता है कि विद्या की यह उत्तम शाखा थोड़े ही दिनों में कपोलकल्पित कथाओं से विज्ञान की पदवी

को पहुंच जायगी। इतिहास से मिले हुए विषय, जैसे जीवनचरित, भूगोल, देशपर्य्यटनवृत्तान्त, इत्यादि सभी इस ज़माने में बड़ी उन्नति को प्राप्त हुए हैं।

तीसरी शाखा विद्या की जो इस समय में उन्नति को प्राप्त हुई, वह विज्ञान है। कहां तो १७०० से पहिले अंग्रेज़ विज्ञानियों ने भी अपनी पुस्तकें लैटिन ही में लिखीं, कहां अब दुनिया भर में किसी किसी विज्ञान के उत्तमोत्तम ग्रन्थ अंग्रेज़ी ही में हैं। इस छोटे से लेख में विज्ञान ग्रन्थों का संक्षेप हाल भी शामिल करना कठिन है। यह कहना काफ़ी समझना चाहिए कि अंग्रेज़ी भाषा अब उन तीन भाषाओं में है जिनमें से एक न एक का जानना, चाहे जिस देश का विज्ञानी हो, ज़रूरी समझा जाता है। दूसरी भाषाएं फ्रेंच और जर्मन हैं। कोई शाखा विज्ञान की ऐसी नहीं जो अंग्रेज़ी ग्रन्थों से पूर्णतया न सीखी जा सके। अब और छोटे छोटे विषय कहां तक गिनावें। संसार में कोई शाखा विद्या की अब तक ऐसी नहीं है जो अंग्रेज़ी भाषा में न विद्यमान हो।

अंग्रेज़ी भाषा को और विद्या के प्रेमियों को बड़ी सहायता उन महानुभावों से मिली, जो प्राचीन और आधुनिक भाषाओं में भली प्रकार ज्ञान प्राप्त करके उनकी पुस्तकों का अंग्रेज़ी में तर्जुमा करते आए हैं। इंग्लैण्ड में ऐसे लोग, स्त्री भी और पुरुष भी, हर जगह मिलेंगे जो अंग्रेज़ी लैटिन और ग्रीक के सिवाय फ्रेंच, जर्मन, इटालियन स्पैनिश, रशियन इत्यादि युरोपीय भाषाओं में से दो तीन भाषाएं जानते हैं; और आक्सफोर्ड, केम्ब्रिज के से बड़े विद्यालयों में तो संस्कृत, अर्बी, इब्रानी, चीनी, जापानी फ़ारसी, फिनीशियन इजिपशियन, तामील, टिलगू, मराठी, बंगला, हिन्दी, उर्दू, सभी प्राचीन और आधुनिक भाषाओं के ज्ञाता मिलेंगे। केवल वही भाषाएं लोग नहीं सिखते जिनका आज कल चलन है, बल्कि उन्हें भी जिनको नष्ट हुए सहस्त्रों वर्ष होगए। हमारे परम माननीय प्रोफ़ेसर मैक्समूलर १८ भाषाएं जानते थे और उनकी अनुवाद की हुई पुस्तकें दो हज़ार पृष्ठ से कम न होंगीं।

हम लोगों में महान दोष एक यह है कि स्कूल या कालिज से निकलते ही विद्या से नाता तोड़ देते हैं, अपने अमूल्य समय को व्यर्थ नष्ट करते हैं। चाहे एम. ए. तक क्यों न पढ़ा हो, स्कूल या कालिज की किताबें पढ़ जाना भी क्या कोई विद्या है? शिक्षा तो केवल इसलिये होती है कि उस राह पर पढ़नेवाले को लगादे जिससे विद्या प्राप्त होसके। यह भी समझना भूल है कि पढ़ना नौकरी के लिये है। यहां मिडिल एण्ट्रन्स पास करने पर नौकरी के लिये अपना दावा समझते हैं; इंग्लैण्ड में इससे ज्यादा योग्यता के लोग गाड़ी हांकते हैं या कारख़ानों में मज़दूरी करते हैं।

इंग्लैण्ड में शहरों और क़स्बों की तो कौन कहे, बड़े बड़े गावों तक में ऐसे पुस्तकालय हैं जहां से किताबें और अख़बार पढ़ने को मिलते हैं। मुफ्त नहीं, लोग इतने विद्यानुरागी हैं कि इनका ख़र्च चन्दे से चलता है। फिर देखिए, बड़े शहरों में रात के स्कूल हैं, जहां दिन को मज़दूरी करनेवाले लोग जा के विद्या प्राप्त करते हैं। ये लोग मीलों से चलकर आते हैं और रातही को वापस जाते हैं और नियत फीस इत्यादि भी देते हैं। इसके सिवाय विश्वविद्यालयों की ओर से और बहुत सी विद्या की उन्नति के लिये समाजें हैं; उनकी ओर से तथा बहुत से विद्यारसिकों के स्वयम् परिचय से लेकचर हुआ करते हैं, जिनकी मन्शा केवल यह है कि वे लोग जिन्होंने कारणविशेष से स्कूल जल्द छोड़ दिया है, इनके द्वारा अपने को शिक्षा देसकें। कहां तक बयान किया जाय; हर जगह विद्या ही की चर्चा है। ध्यान देने योग्य इसमें केवल यह बात है कि वहां लोग मामूली लेकचर तक के लिये टिकट लेते हैं और दाम देते हैं। हमारे देश में लोग रण्डियां नचाते हैं; परन्तु एक किताब

या पत्रिका ख़रीदना हो तो ४ दिन तक सोचेंगे; फिर अख़ीर में कहेंगे 'अजी जाने दो'।

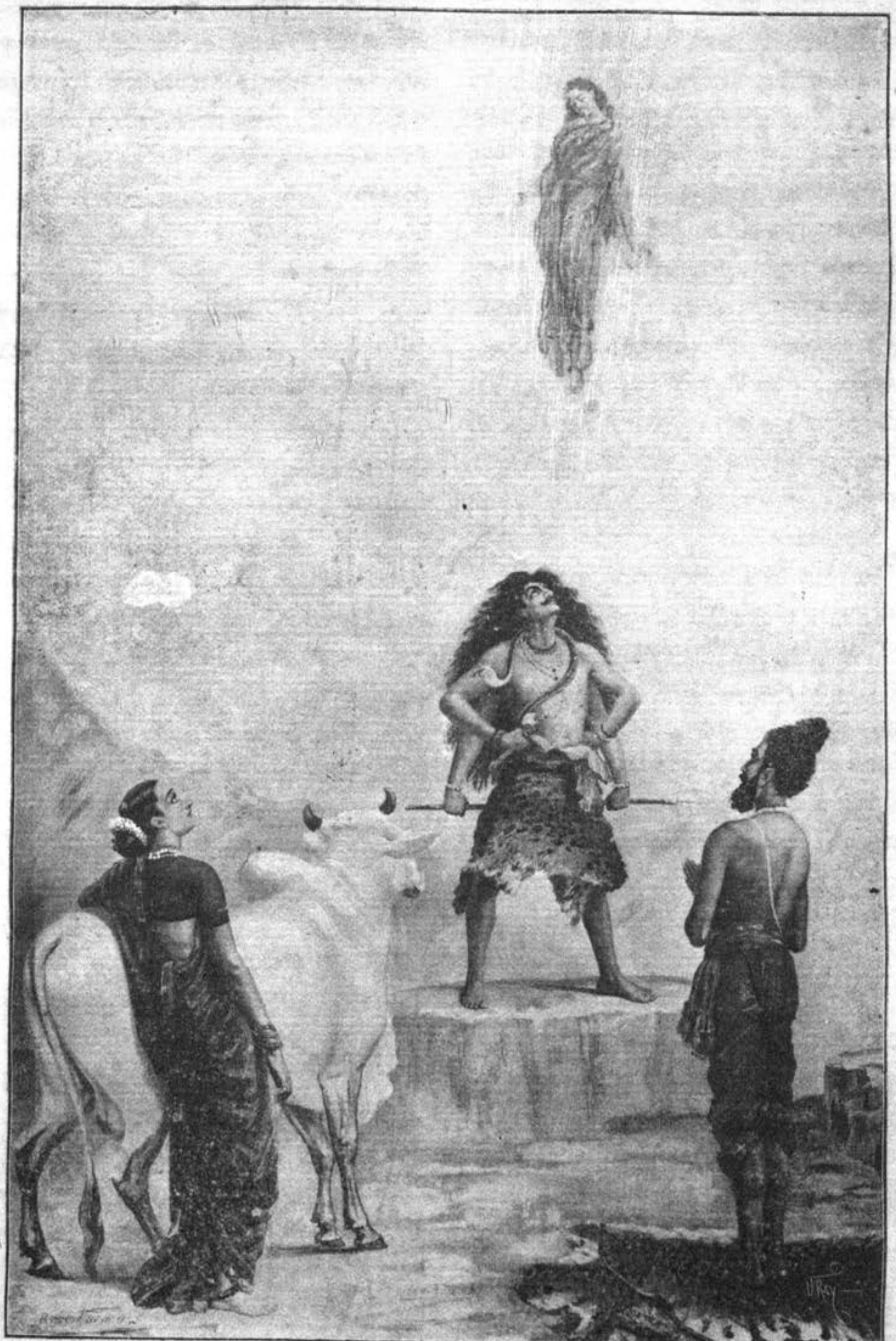
कुछ महाशय यह कह बैठते हैं कि खाने को न मिले और विद्या की उन्नति में ध्यान दें, यह कैसे होसकता है? ज़रा अंग्रेज़ों का पुराना इतिहास पढ़िए। सैकड़ों अच्छे ग्रन्थकार होगए हैं, जानसन, सेवेज, मारलो इत्यादि, जो भीख मांगते थे। पहिले पहल आक्सफ़ोर्ड वा पेरिस को सैकड़ों कोस पैदल चलकर विद्यार्थी भीख मांगते जाते और तमाम ज़िन्दगी इसी प्रकार काटते थे। ख़ैर वह जाने दीजिए। क्या हमारे एम. ए., बी. ए., सब लंघन ही कर रहे हैं? कदापि नहीं। बहुत से उनमें तो इंगलैण्ड के बड़े से बड़े विद्याभूषणों से ज़्यादा धनी हैं। परन्तु इनमें से दो एक को छोड़कर कोई आध घण्टा भी विद्योपार्जन में नहीं लगाते। यह बात छिप नहीं सकती कि हमलोगों में विद्यानुराग नहीं, इम्तहान पास करने का शौक चाहे भलेही हो; वह भी नौकरी की लालच से। समय और धन का उचित प्रयोग भी नहीं जानते। ऐसी हालत में कुछ दुरुस्ती की उमेद न रखना चाहिए। भारतवर्ष दिन दिन और भी बुरी दशा को प्राप्त होगा। हां, अब भी समय है:—जो हम ज़रा ध्यान दें तो सब कुछ बन सकता है।

गिरिजादत्त बाजपेयी, एम. ए.।

गङ्गावतरण

"तरलित तुमुल तरंगवती सुरधुनी सुशीला।
करत पुनीत व्योमपथ उतरति है करि लीला॥
सावधान दिक्कुञ्जर; धरा! तुहू सुधि इत दै।
रे फनीस! धरु याहि; कमठ! ताही मधि चित दै॥
हैमवती यह बहिन उमा की बड़ी पुनीता।
आवत, पापपुञ्जजन सुगति देन मनचीता॥
हटो, बचो रे गगनबिहारी! मारग छोरो।
नतकंधर से विनय सहित तृन ह्वै तृन तोरो॥
भानुवंस अवतंस महाभागवत भगीरथ।
कियो नाम तूहूने या छिति पै सुभ तीरथ॥
अब राजर्षि! तपस्या तेरी यह फल लाई।
सजग होउ शिव!" गगन गिरा यों भाषि थिराई॥
जहं लगि हो अवकाश व्योमभारती समोई।
बढ़ी प्रतिध्वनि आघात प्रतिघात बिलोई॥
डगमगान दिक्कुञ्जर, धरनी डोलन लागी।
सेष सगमगाने, कच्छप की थिरता भागी॥
देवासुर नर नाग चराचर सरकि सकाने।
जलचर थलचर नभचर कंपितगात चुपाने॥
पाइ विपुल अवकाश आज आकाश शब्दमय।
कियो नाम निज सत्य, भाषि 'गंगे! जय जय जय!!'
कोटि भानुगति गर्व खर्व करि धाई गंगा।
पितागेह तजि व्योमबीथि मधि आई गंगा॥
ठठकि एक छन गगन मध्य मुसुकाई गंगा।
चितै शंभु निज गति की बात सुनाई गंगा॥
"हे हे भाम!* भवानीपति! मम बेग न जानहु।
क्यों बरबस मम भार सहन को तुम हठ ठानहु॥
सहित तुमहिं कैलास भेदि पाताल सिधैहौं।
निज छोटी भगिनी कों तव मुख कहा दिखैहौं॥
या बावरे भगीरथ की मति पै तुम भूले।
मसक होइ नग गहन चले, दैवहिं प्रतिकूले॥
अस्तु, होहु तुम सजग;" भाषि यों अहमिति बानी।
नभमंडल ते बेगहि धाई, चितै भवानी॥
सुनत व्यंगमय अहमिति बचन विषमलोचन यों।
तमकि उठे रिस घोरि मूर्त्ति धरि कोप पुंज ज्यों॥
चांपि पगनि कैलास रौद्रवपु कटि कर दीन्हे।
पृष्ठभाग में जुगल करन निज शूलहि लीन्हे॥
फट फटाइ निज जटा तिहूं लोचन रिस बोरे।
ज्वाला-माला-भीषन आनन ओप अथोरे॥
करि ऊंचे मस्तक गंगा दिसि नैन तरेरे।
वाकी बेगवती तरलित गति हूं को हेरे॥
अभिमानिनि के गर्व खर्व करिवे हित ठाढ़े।
मूर्तिमन्त रस रौद्र मनहुं छिन छिन प्रति बाढ़े॥
विनय सहित ठाढ़े ह्वै राजा चितव संभु दिसि।
अति सकात निज हृदय मध्य लखि संकर की रिसि

* भामनीपति।



राजा रविवर्म्मा कृत गङ्गावतरण

कबहुं कबहुं गंगा की गति हूं पै दृग फेरत।
पुनि तामस अधिदैवहु की मानस-मति हेरत॥
नदी हूं करि कोप ठरी चितवत सिव पाहीं।
मनहुं आज वाहू के रिसि की सीमा नाहीं॥
पारवती दै ठेस पीठ नंदी की ठाढ़ी।
चितवति गंगादिस, धरकति छाती अति गाढ़ी॥
मनहु वेग धारा में निज गतिपुंज मिलावति।
वायुवेग प्रति छिन पाछे करि उतरति आवति॥
मुदित नैन सिथिलित सुअंग वर बलित बसन तन
खलित केस अति ललित छटा छिटकति चहुं प्रतिछिन
वह धावत आवति मुनिजन-मानस हरखावत।
कै वाकी दिसि यह भूगोल गेंद सो धावत॥
कोटि कोटि घन नादन सों करि यह दिग कम्पित।
गिरी शंभु की जटा मध्य गङ्गा करि झम्पित॥
घूमन लागी जटा जूट घनगहन मध्य वह।
चकित गर्व करि सर्व सकुच तन चसक नव्य वह॥
थर थराय मन में सकाइ सिरनाइ सोच तें।
बिनवन लागी सिवहिं शैलबाला सकोच तें॥
इत राजर्षि भगीरथहू विनती अति कीन्हो।
तब तजि कोप शंभु गङ्गा की धारा दीन्ही॥
दिव्य सुरथ पै चढ़े भगीरथ आगे धाए।
पाछे भागीरथी चली चित चोप चढ़ाए॥
गर्जति डफनति झूमति हहहराति तट तोरति।
अनगिनतिन जनपद पद धौत करति छिति बोरति
जन्हु रिषी के आश्रम को जलप्लावन कीन्हों।
तब मुनि रिस करि गङ्गधार सारी पी लीन्हो॥
पै जब बहुरि करी विनती राजा कर जोरे।
तब जान्हवीधार काननि ते जन्हुहि छोरे॥
मिली धार वा सगर सुवन की राख बहाई।
सागर सों मुरि कपिलमुनी के पग सिर नाई॥
ब्रह्मशाप तें छूटि गए सुरधाम सगरसुत।
"जय गंगे जय गंगे" यों कहि कहि तेहि विनवत॥
जब आई गङ्गा छितिपै मंगल की मूला।
भए चराचर मुदित मिटे सब के मनसूला॥
हरी भरी धरनी धरनी यह हरि की सोहति।
निज नव जोवन की छन छटा छिटकि मन मोहति॥

नवजुग मानो छयो जगत में याके आए।
पै 'मातगंगे!' अब का लखियत मुंह बाए!!!
तू कहुं जाइ बिलाई, कैसी बनि सचुपाई
हाय भयो यह कहा! अंब! गंगे! लखु आई!!!
रहे न अब राजर्षि भगीरथ राम न राजा।
नहि ब्रह्मर्षि जन्हु, कुलगरु वशिष्ट महराजा॥
त्रेता द्वापर बीति अमल कलजुग को आयो।
हाय! पराधीनतापाश भारतहि बंधायो॥
विचरे जहं ब्रह्मर्षि, कोटि राजर्षि राजगन।
वह भारत पददलित भयो म्लेच्छन के घन घन॥
उलट फेर अति भयो हाय गंगे! या भूपर!
तू छिति छोरि गई पताल, कै धाई ऊपर!!!
'भारत भारत' नाम आज आरत हूं बाँचो।
साँचो सब कछु गयो, ठाठ रहिगो अब काँचो॥
इन्द्रप्रस्थ अयोध्या मथुरा भूरि नसानी।
महा महा जनपद की अब ना रही निसानी॥
ग़ज़नी की आसुरी अनीक नीक सब नास्यो।
अन्धकार में परयो देस को देस उजास्यो॥
स्वामी हू प्रभु बने दास दासी भारतजन।
आरज सों बरजोरी यवन भए अनगिनतिन॥
भाई भाई को तजि दीन्हों तनय बाप को।
शिष्य गुरू को, पत्नी पति को, जीव आप को॥
गिरो भयानक बज्राघात धर्म पै आई।
हंसी खुसी सब भगी, मचो चहुं हाय रोवाई॥
ढहे देवमन्दिर अपार द्विज मारे कोटिन।
बाल वृद्ध वनिता जन के सिर कटे अनगिनतिन॥
ईंट यहां की मक्के में जा लगी निगोड़ी।
मन्दिर के सामान यवनगन मसजिद जोड़ी॥
धन, जन, बल पुरुषार्थ, सत्य सब नस्यो यहां को।
सब सोवत हैं, नाहिं जानत धन गयो कहां को॥
बधे पिथोराराय गए, सब सूर अहेरी।
भयो क्षत्रकुल ध्वंस हाय लागी नहिं देरी॥
राख, हाय, पद्मावति की मिलि गई पवन में।
धन्य अहो! परताप! सीस नहिं नयो यवन में॥
कोटि वीर, अनगिनत वीरबाला सब नासी।
हाय किते सोवति है तू गंगे सुखरासी?

कब लैहैं अवतार कल्कि भगवान बतावहु ?
छोरि आपुनी नींद, मात ! गंगे इत आवहु ॥
छल बल के कल करि भारतजन बेगि जगावहु ।
समल अमल करि हृदय निजत्व तिनहि समझावहु
धन, बल, विद्या, विनय, नीति, वाणिज्य, शिल्प बहु
सीखहिं भारतवासी जन, जानहिं निजत्व यहु ।
पाइ सबै निज निज निजत्व भारतवासी जन ।
"जय गंगे ! जय गंगे ! जय जय भाषहिं प्रति छिन ॥

श्री किशोरीलाल गोस्वामी ।

स्वर्गवासी लाला वृजमोहनलाल

यह हम कई बेर लिख चुके हैं कि भारतवर्ष बड़ा दानी देश है। प्राचनी काल में तो इसके दान का कहना ही क्या था। उन दिनों में तो यथा आवश्यक दान दिया जाता था, परन्तु इन दिनों में इस टूटी हुई अवस्था में भी इसमें दान बहुत होता है। हां, यदि इस आज काल के दान में किसी प्रकार की आपत्ति देख पड़ती है तो वह केवल यही है कि आवश्यकता और उचित अनुचित का विचार करके आज कल दान नहीं दिया जाता, जिससे लाभ की अपेक्षा प्रायः हानि हो जाती है और वह हानि भी ऐसी कि जिससे देश की उन्नति में रुकाव होता है। इस समय यदि कोई कार्य अत्यन्त आवश्यक है तो यही है कि भारतवासियों की प्रवृत्ति दान को उचित मार्ग पर लगाने की ओर की जाय। हमलोग किसीका नाम नहीं लिया चाहते, पर हमें इस बात के कहने में कुछ भी भय और सङ्कोच नहीं है कि हमने अपनी आंखों ऐसे स्थानों पर लोगों को दान देते देखा है जहां का रुपया केवल दुराचार, व्यभिचार और जघन्य पापों की वृद्धि ही में व्यय किया जाता है। देखें, भारतवासियों की आंखें कब खुलती हैं कि वह अपने कठिन परिश्रम से कमाए हुए पैसे को दानस्वरूप उचित मार्ग में लगाने का उद्योग करते हैं। हमें तो विशेष दुःख इस बात पर होता है जब हम यह देखते हैं कि यदि इस बुराई के दूर करने का कोई महानुभाव उद्योग करते हैं तो देश के शत्रु धर्म्म की आड़ में हाहाकार मचा कर सारे उद्योगों को वृथा कर देते हैं और साथ ही भोले भाले राजे महाराजे भी इन घोर स्वार्थियों के जाल में फंसकर अनजाने देश का अनिष्ट कर बैठते हैं। अस्तु, ये बातें ऐसी हैं कि जिनकी सुधार लोगों की आंख खुलने ही पर केवल हो सकती है और वह तब तक होना सम्भव नहीं है जब तक विद्या का पूरा पूरा प्रचार न हो। इसलिये हम घूम फिर कर इस बात पर जोर देते हैं।

संसार की गति सदा एक सी नहीं रही है। कुछ न कुछ परिवर्तन सदा होता रहता है। यदि किसीके दिन आज अच्छे हैं तो कल उसे दुख-सागर में गोते खाने पड़ते हैं। यदि कोई आज शोकसागर में निमग्न है तो कल उसके भाग्य में सुख और आनन्द प्राप्त करना है। इस नियम का पालन मनुष्यों को जिस प्रकार करना पड़ता है, वैसे ही जातियों को भी करना पड़ता है। बस इसीके अधीनस्थ होकर यदि हमारा यह देश एक समय सभ्यता, विद्या, सदाचार आदि गुणों में उच्चतम आसन पर विराजता था तो आज उसकी अधोगति है। परन्तु समय कुछ आशा दिखा रहा है। हमारे देशवासियों को विद्याप्रचार में उत्साह होता जाता है। दान उचित मार्ग पर लग रहा है। इसीसे हम आशा करते हैं कि हमारे दिन अच्छे आने वाले हैं, चिन्ह शुभ हैं। यद्यपि पञ्जाब में यह प्रथा बहुत दिनों से चल रही थी कि शुभ उत्सवों पर देश का हित करनेवाली सभा समाजों को दान दिया जाता था, परन्तु हमें यह जानकर विशेष आनन्द होता है कि इन प्रान्तों में भी उस प्रथा का प्रारम्भ होगया है। हमारे देश के मित्र बिगड़े नहीं। इन प्रान्तों में इस प्रथा के चलानेवाले आर्यसमाजी नहीं हैं, वरं सनातनधर्म्मावलम्बी हैं। अभी पञ्जाब में दो बड़े प्रशंसनीय दान हुए हैं। हिसार में एक दानी महाशय ने १३०००) रु० अनाथों की रक्षा

के लिये दिया है। गोविन्दपुर में एक दूसरे दानी महोदय ने १५०००) रु० इसलिये दान किया है कि आयुर्वैदिक रीति के अनुसार औषधालय खोला जाय, जिसमें लोगोंको औषधि बिना मूल्य दीजाय। इन दानों की बात सुन हम आनन्दित और साथही लज्जित भी हो रहे थे। आनन्दित इसलिये कि हमारे देश में ये उत्तम उत्तम कार्य होरहे हैं, और लज्जित इसलिये कि हमारे प्रान्त में कुछ नहीं होता है। परन्तु यह सम्वाद पाकर हमको विशेष सन्तोष हुआ कि प्रयाग में एक दानी महाशय ने एक पुस्तकालय के लिये ४००००) रुपए दानकिए हैं।

हिन्दी पढ़े लिखे लोगों में कोई ही ऐसा होगा जो प्रयाग के भारतीभवन पुस्तकालय का वृत्तान्त न जानता हो। इसके संस्थापक बाबू ब्रजमोहन लाल जी थे। इनकी अवस्था अभी ३२ वर्ष की थी। स्वयं विशेष विद्यालाभ न करने पर भी इनकी रुचि विद्याप्रचार और विशेषकर हिन्दी प्रचार की ओर अधिक थी। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये आपने एक पुस्तकालय स्थापित कर रक्खा था, जिसमें हिन्दी और संस्कृत की प्रायः समस्त अच्छी अच्छी पुस्तकों को संगृहीत करने का उद्योग है। इस पुस्तकालय का समस्त व्यय बाबू ब्रजमोहन लाल स्वयं देते थे। किसीसे कुछ नहीं लेते थे। गतवर्ष आप बद्रीनाथ जी गए थे। वहां से किसी ऐसे रोग से पीड़ित हो आए कि वह दिनों दिन बढ़ता ही गया। बहुत कुछ उद्योग करने पर भी उसकी शांति नहीं हुई। निदान इस मई के मध्य में वे इस असार संसार को छोड़ परलोक सिधारे। जब उन्होंने अपना समय निकट जाना तो उन्हें अपने प्यारे पुस्तकालय की सुध आई। हमारे पीछे भी वह सदा चला जाय इस चिन्ता ने उन्हें विह्वल किया। निदान अपने भाइयों की सम्मति से उन्होंने इस पुस्तकालय के लिये एक भूमि जो अहियापुर में स्थित है, १००००) रुपए पुस्तकालय के लिये एक गृह बनवाने को, २५०००) रुपए उसके खर्च को सदा चलाने के लिये और ११३१९॥।=)॥। जो उनके पास पुस्तकालय के हिसाब में जमा था, दान दिया और इस सब कार्य के प्रबन्ध के लिये निम्न लिखित महाशय ट्रस्टी नियत किएगए—

राव रामचरण दास बहादुर
लाला भवानी प्रासाद } लाला ब्रजमोहनलाल
लाला राजा राम } के भाई
बाबू कालिकाप्रसाद खत्री
पण्डित मदनमोहन मालवीय
ठाकुर जयकृष्ण व्यास
राय बहादुर लाला लाल बिहरीलाल, बी ए।

ब्रजमोहन लाल जी की अवस्था अभी कुछ भी न थी। चरित्र और व्यवहार उनका आदर और अनुकरण करने योग्य था। आडम्बर करने अथवा लोगों से वाहवाही लेने की कभी उनके मन में कामना उत्पन्न नहीं हुई। सदा शान्ति पूर्वक चुपचाप अपना काम करना यही उनका मूल मंत्र था। ऐसे निस्वार्थी देशहितैषी पुरुष के उठ जाने से हमारे देश ने एक अपूर्व पुरुष खोया। ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति और उनके कुटुम्बियों को इस शोक के सहन करने की शक्ति दे। बाबू ब्रजमोहनलाल जाति के खत्री थे और धर्म्म उनका वैष्णव था। खत्रियों में विद्याप्रचार की ओर ध्यान ही नहीं और वैष्णवों में ऐसे दान की प्रथा नहीं है। इन दोनों के विपरीत होने पर बाबू ब्रजमोहनलाल का ४००००) का दान बहुमूल्य और वे स्वयं आदर्श माने जाने चाहिए। हमारी प्रार्थना अपने देश के उन पढ़े लिखे धनाढ्य लोगों से है कि, जो निस्सन्तान हैं। वे भारतवासी मात्र को अपनी सन्तान मानें और अपने धन को देशहितकर कार्यों में लगा सदा के लिये यश के भागी हों।

मोतियों की गुफा

इस विचित्र संसार में अनेक मनुष्यों पर अनेक प्रकार की आश्चर्यजनक घटनाएं हुआ ही करती हैं, परन्तु जैसी घटनाएं मुझ पर

बीती हैं वैसी कदाचित् किसी बिरले ही मनुष्य पर बीती होंगी। मेरा नाम श्यामबलदेव है। मैं नैाधाम नगर का रहनेवाला हूं। मैंने संसार के समस्त देशों में भ्रमण किया है और ऐसी ऐसी विचित्र बातें देखी हैं कि उनका वर्णन करने से कदाचित् वे गप्प तथा असम्भव जान पड़ेंगी। जिस समय मैं पीतसागर में यात्रा कर रहा था ते मैंने कई बेर जापानी गोताखोरों को समुद्र में से मोती निकालते देखा था। वे कहते थे कि यहां पर कई ऐसे छिछले स्थान हैं जहां ये मोती अधिकता से मिलते हैं। परन्तु इन स्थानों में से निरन्तर मोती निकाले जाने के कारण अब उन में बहुत कम मोती रह गए हैं। उन्होंने यह भी कहा कि इस पीत सागर में एक अधिक गहिरे स्थान पर एक गुफा है जहां ढेर के ढेर मोती हैं; परन्तु हमलोग किसी भांति इस गुफा तक पहुंच नहीं सकते। ऐसा जान पड़ता है कि ईश्वर ने इन मोतियों को इस गुफा ही में रहने के लिये बनाया है। मैंने विचार किया कि यदि कोई ऐसी युक्ति की जाती कि जिससे हमलोग इस गुफा तक पहुंच सकते ते हमलोगों के हाथ बड़ा द्रव्य लगता। तब से मैं सदैव इस युक्ति की चिन्ता में लगा रहता।

इसके वर्षों उपरान्त जब मैं अपने नगर नैाधाम में पहुंचा ते मैंने बड़े हर्ष के साथ यह बात सुनी कि मेरे मित्र रुद्रपुरवासी फरकराम ने एक ऐसा जहाज़ बनाया है जो जल के नीचे चलता है। मैंने विचारा कि मेरे मनोरथ के सफल करने के लिये, अर्थात् पीतसागर की मोतीवाली गुफा में पहुंच कर असंख्य द्रव्य का स्वामी बनने के लिये, ठीक ऐसी ही वस्तु की आवश्यकता है। अतएव मैं अपने मित्र फरकराम से मिला और मैंने अपने विचार उनसे प्रकट किए और उनसे इस पानी के नीचे चलनेवाले जहाज़ के देखने की प्रार्थना की। फरकराम बड़ी तीक्ष्ण बुद्धि के मनुष्य हैं। इनका रुद्रपुर में कल बनाने का बड़ा भारी कारखाना है। इनको विचक्षण बुद्धि का प्रमाण इसी जल के नीचे चलनेवाले जहाज़ से मिलता है। इन्होंने मेरी बातें बड़े ध्यानपूर्वक सुनीं। उन्होंने कहा कि पीतसमुद्र की यात्रा के विषय में मैं तुम्हारे प्रस्ताव को बहुत उत्तम समझता हूं। मैं इस विषय में और विचार करके जैसा होगा वैसा तुम्हें शीघ्र कहूंगा।

अब हमलोग इस अद्भुत जहाज़ के देखने के लिये उठे। इस कार्य्यालय के बड़े हाते के भीतर एक ऊंची पक्की दीवारों का घेरा है, जिसमें एक बड़ा तालाब है। यह अपूर्व जहाज़, जिसका नाम मेरे मित्र ने "निगाहक" रक्खा था, इसी तालाब में था। इसका अधिक भाग जल के भीतर था। जितना भाग जल के ऊपर दिखाई देता था वह फौलाद का बना हुआ ढलुआं, लम्बा तथा पतला था, जोकि ठीक ह्वेल मछली के आकार का जान पड़ता था। इसमें कई खिड़कियां भी थीं जिनमें अत्यन्त मोटे हलबी शीशे लगे हुए थे। इसकी छत पर एक सकड़ा लम्बा स्थान बना था जिसके चारों ओर लोहे को छड़ें लगी थीं; और इसमें दो मस्तूल भी थे। एक तख़ते द्वारा, जोकि तालाब के किनारे से जहाज़ पर लगा था, हमलोग जहाज़ के ऊपर गए। वहां फरकराम ने एक छोटा सा फौलाद का द्वार खोला। इसमें प्रवेश कर तथा चक्करदार सीढ़ी से नीचे उतर कर हमने अपनेको एक बड़े कमरे में पाया। इसमें दो व्यक्ति, जिनका नाम बरन और पदम है, और जो फरकराम के बड़े विश्वासपात्र नैाकर हैं, इस कमरे की झाड़ पोंछ में लगे थे। फरकराम ने इस कमरे को सब प्रकार से सुसज्जित करने में कोई बात उठा नहीं रक्खी थी। इसमें अच्छी अच्छी कुरसियां, सोने चांदी के अच्छे अच्छे असबाब तथा अमूल्य अमूल्य पुस्तकें थीं। वास्तव में यदि इसे तैरता हुआ राजभवन कहें तो अत्युक्ति न होगी। इसके आगे भोजनगृह था। यहां पर के अमूल्य बर्तनों को देख मैं चकित हो गया। इसके पीछे फरकराम मुझे शस्त्रगृह में ले गए। यहां पर मैंने तोप, बन्दूक, पिस्तौल,

भाले, फरसे, छुरे तथा अनेक प्रकार के शस्त्र देखे। परन्तु मैं यह नहीं समझ सका कि ये तोप, बन्दूक जल में किस काम के होंगे, क्योंकि उनसे जो गोला जल के भीतर छोड़ा जायगा वह दो ही चार फुट जा कर रह जायगा। मैंने अपना यह विचार फरकराम से कहा। उन्होंने उत्तर दिया कि इसमें साधारण गोला नहीं छोड़ा जाता, वरन् इसके लिये मैंने सूई के आकार का लग भग डेढ़ फुट लम्बा गोला बनाया है। यह भीतर से पोला है और इसके भीतर एक प्रकार का मसाला भरा है। जब यह किसी वस्तु पर चलाया जाता है तो भीतर प्रवेश करने से इसके नोक पर जो सूई लगी है, वह भीतर दब जाती है और उसकी रगड़ से इसके भीतर का मसाला इतने ज़ोर से फूट उठता है कि उसके आघात से यदि ह्वेल मर न भी जाय तो अचेत अवश्य हो जायगी। यह बात सुन कर मैं फरकराम की मन ही मन प्रशंसा करने लगा। इतने में मेरे मित्र फरकराम ने मुझसे पूछा कि क्या आप समझ सकते हैं कि इस जहाज़ को, स्वेच्छापूर्वक कैसे डुबा सकते हैं और फिर जब चाहें तब उसे कैसे पानी के तल के ऊपर उठा सकते हैं। मैंने कहा कि नहीं। इस पर फरकराम ने जहाज़ की एक पटरी अलग की, जिसके भीतर एक कोठा दिखाई देने लगा। फरकराम ने कहा कि यह कुण्ड है। इसमें बड़ी शक्ति की कल लगी है, जिसके द्वारा यह कुण्ड बात की बात में जल से भर जाता है और तब यह जहाज़ जल के नीचे चला जाता है। फिर जब जहाज़ को ऊपर लाना चाहते हैं तो दूसरी कल द्वारा इस कुण्ड का पानी निकाल देते हैं, जिससे कि जहाज़ तुरन्त ऊपर चला आता है। मैंने कहा कि जहाज़ को इस प्रकार जल के नीचे ले जाने के पहिले ये सब द्वार बन्द कर दिए जाते होंगे, जिसमें कि इस जहाज़ के भीतर पानी न आवे। मेरे मित्र ने कहा हां, इसके लिये केवल एक कल दबानी पड़ती है जिससे सब द्वार आपसे आप ही बन्द हो जाते हैं। इसके अनन्तर मेरे मित्र मुझे यन्त्रगृह में ले गए। यहां पर मैंने जो बात देखी उससे मैं दङ्ग हो गया। मेरे मित्र ने कहा कि इसी यन्त्र द्वारा हमलोग पानी के नीचे रह सकते हैं। इस यन्त्र से प्राणप्रद वायु बनती है और जो नलियां इसमें लगी हैं, वे ही जहाज़ भर में स्वच्छ वायु पहुंचाती हैं और साथ ही इसके गन्दी हवा का नाश भी करती हैं।

अब भोजन का समय हो जाने के कारण फरकराम ने मुझसे चलने के लिये कहा। आते समय उसने अपने दोनों नौकरों से कहा कि बहुत सम्भव है कि हमलोगों को शीघ्र यात्रा करनी पड़े। अतएव तुम लोग 'निगाहक' को सब प्रकार से इस योग्य कर रक्खो कि हमलोग जिस समय चाहें यात्रा कर सकें।

दूसरे दिन प्रातःकाल मेरे लिये बड़े हर्ष की बात हुई कि फरकराम ने आकर मुझसे कहा कि "मैंने कल रात्रि को पीत सागर की यात्रा के विषय में विचार कर इस यात्रा को शीघ्र करना निश्चय किया है, और इसकी तैयारी करता हूं।" फिर भी मेरे मित्र को अपनी अनुपस्थिति में अपने बड़े कार्यालय का प्रबन्ध करने में पूरे १७ दिन लगे। अट्ठारहवें दिन हमलोग यात्रा के लिये तैयार हो गए।

जिस तालाब में 'निगाहक' था वह नहर द्वारा नदी से मिला हुआ है और यह नदी सीधी समुद्र से मिली है; अतएव हमलोगों को 'निगाहक' पर ठीक तालाब ही से यात्रा करने में कोई आपत्ति नहीं थी।

यद्यपि इस बात का पहिले ही से प्रबन्ध किया गया था कि 'निगाहक' की यात्रा किसीको विदित न हो; पर न जाने कैसे यह बात नगर भर में फैल गई थी और जब हमलोग तालाब के बाहर हुए तो नहर से लेकर नदी के बहुत दूर तक दोनों तटों पर हमलोगों ने बड़ी भीड़ देखी जो कि हमलोगों को देख कर प्रसन्नता से चिल्ला रही थी। फरकराम ने कहा कि इन बिचारों को निराश करना

नहीं चाहिए; इन लोगो को 'निगाहक' का विचित्र तमाशा दिखाना ही उचित है। अतएव उन्होंने हमलोगों को भीतर बुला कर नम्बर ३ वाली कल को दबाया जिससे कि जहाज़ के सब द्वार बन्द हो गए। तब उन्होंने उस कल को दबाया जिससे कुण्ड भर जाता था। इसके दबाते ही तुरन्त जहाज़ बोझ पाकर पानी के नीचे चला गया। जल के नीचे हमलोगों को किसी प्रकार का क्लेश नहीं जान पड़ा। बिजली के प्रकाश से हमलोगों को सब वस्तुएं भली भांति देख पड़ती थीं ग्रैार प्राणप्रद वायु बनानेवाले यन्त्र द्वारा स्वच्छ वायु भी मिलती थी। परन्तु हम लोग बहुत देर तक जल के नीचे नहीं रहे। फरकराम ने तनिक ही देर में जल निकालने वाली कल दबाई, ग्रैार तुरन्त ही जहाज़ तूम्बे की नाईं उछल कर ऊपर चला ग्राया। इसपर चारों ग्रोर से सब लोग बड़ी प्रसन्नता से जय जय ध्वनि मचाने लगे।

ग्रब 'निगाहक' की गति बढ़ा दी गई ग्रैार रुद्रपुर शीघ्रही पीछे छूट गया ग्रैार धीरे धीरे दृष्टि से बाहर हो गया। संध्या होने के पहिले ही हमलोग समुद्र में पहुंच गए। ग्रन्धेरा होने पर 'निगाहक' में बिजली का प्रकाश कर दिया गया ग्रैार इस प्रकार 'निगाहक' रात्रि भर चलता रहा। सवेरा होने पर जब हमलोग जहाज़ की छत पर गए तो हमलोगों ने ग्रपने को ग्रनन्त समुद्र के बीच पाया। चारों ग्रोर समुद्र ही समुद्र दिखाई देता था। स्थल का कहीं नाम को भी दर्शन नहीं था। यहां पर मेरी प्रबल इच्छा समुद्र के तल को देखने की हुई। मैंने इसे फरकराम से प्रगट किया। परन्तु उन्होंने कहा कि यहां पर समुद्र बहुत गहिरा है, ग्रर्थात् लगभग एक मील के गहिरा होगा; ग्रतः यहां पर यदि हम समुद्रतल पर पहुंचने का यत्न करें तो वहां पर पहुंच कर हमलोग जल के बोझ से दब कर पिलुदे हो जांयगे ग्रैार फिर कभी जल के ऊपर न ग्रा सकेंगे। परन्तु हमलोग शीघ्र ही समुद्र के ग्रधिक छिछले भाग में पहुंचेंगे ग्रैार वहां पर तुम्हारी इच्छा पूरी हो सकती है।

इसके दूसरे दिन फरकराम ने कहा कि ग्रब हमलोग हज़ार फुट से ग्रधिक गहिरे पानी में नहीं हैं ग्रैार यह स्थान समुद्र का एक चित्ताकर्षक भाग भी है; ग्रतएव हमलोग यहां पर समुद्र के तल पर उतरेंगे।

फरकराम ने कल द्वारा 'निगाहक' के सब द्वार बन्द कर दिए ग्रैार फिर कुण्ड को भरनेवाली कल को हिलाया, जिससे वह बहुत ही थोड़े समय में समुद्र के तल पर धीरे से लग गया। ग्रब फरकराम ने एक कल को दबाया जिससे सब बिजली के दीपक जलने लगे। ग्रब हमारी दृष्टि एक बड़े ग्रद्भुत दृश्य पर पड़ी ग्रैार मैं इसे देख कर कुछ देर तक ग्रवाक हो गया। जहां तक बिजली का प्रकाश पहुंचता था, वहां तक नाना प्रकार के जलचर तैरते हुए देख पड़ते थे। समुद्र का तल स्वच्छ सफेद बालू का था, जिसपर केकड़े, बड़ी बड़ी पानी की मकड़ियां, ग्रष्टपद तथा कई प्रकार के घोंघे थे। इसके बीच बीच में मूंगों के वृक्ष तथा ग्रन्य कई प्रकार के जल के वृक्ष लगे थे, जिनके बीच में ग्रनेक प्रकार ग्रैार रङ्ग बिरङ्ग की छोटी बड़ी मछलियां तैरती थीं। इस दृश्य को मैं बहुत देर तक चुपचाप देखता रहा। फरकराम ने मुझसे पूछा कि क्या यह ग्रच्छा नहीं होगा कि हमलोग जहाज़ पर से उतर कर समुद्र तल की सैर करें। मैंने उनसे कहा कि यह कैसे सम्भव है? ये सब विकटाकार जन्तु हमलोगों को लील हो जांयगे। फरकराम इस पर हंसे ग्रैार बोले कि इन जन्तुग्रों के लिये हमको प्रबन्ध करना चाहिए। यदि हमलोग सावधान रहेंगे तो इनमें से ग्रधिकांश जन्तु हम लोगों को क्लेश नहीं देंगे।

इतने में बरन ने बड़ी दूर पर एक वस्तु देखी ग्रैार उसे हमलोगों को दिखलाया। मुझे जान पड़ा कि यह एक डूबा हुग्रा जहाज़ है जिसकी कदाचित् सामुद्रिक ग्रांधी में पड़ कर यह दशा हुई है। फरकराम ने भी कहा कि हां, यही बात है। इतनी दूर से वह बाणिज्य का जहाज़ जान

पड़ता था। अतएव हम लोगों की सम्मति उसको जाकर देखने को हुई।

फरकराम ने तुरन्त कुण्डवाली कल को धीरे से दबाया जिससे जहाज़ समुद्रतल के कुछ ऊपर होगया और उस डूबे हुए जहाज़ की ओर हम लोगों को ले चला। इसके ठीक निकट पहुंचने पर 'निगाहक' खड़ा कर दिया गया। अब इस डूबे हुए जहाज़ की दशा से यह स्पष्ट विदित होता था कि यह किसी आंधी में पड़ कर इस दशा को प्राप्त हुआ था। इसके एक द्वार के भीतर एक मनुष्य का पञ्जर था जो ऐसा जान पड़ता था, कि किसी कारण से जहाज़ से निकल नहीं सका और वहीं का वहीं समाप्त हो गया। यह हमलोगों के लिये एक बड़ा हृदयविदारक दृश्य था, जिससे हम सभों के रोएं खड़े हो गए।

अब फरकराम ने बरन से गोताखोरी का वस्त्र लाने के लिये कहा, तथा मुझसे भी अपने साथ डूबे हुए जहाज़ पर चलने को कहा। मैंने तो पहिले इसे स्वीकार नहीं किया, परन्तु बरन को भी फरकराम के साथ जाते देख, मुझमें भी साहस आगया और मैं भी चलने के लिये प्रस्तुत हो गया। थोड़ी ही देर में हम तीनों ने गोताखोरी के वस्त्र पहिन लिए। फरकराम ने पदम को, जो 'निगाहक' पर रहने को था, सब बातें समझा दीं।

जल के नीचे 'निगाहक' पर से उतरने के लिये एक बहुत ही छोटी कोठरी थी, जिसमें दो द्वार थे,—एक तो भीतर के कमरे की ओर और दूसरा ऊपर छत की ओर। इस कोठरी में पहुंच कर हमलोगों ने कमरे की ओर वाला द्वार बन्द कर दिया और गोताखोरी का टोप पहिर लिया, जिसमें सांस लेने के लिये नली भी लगी थी। इन नलियों के द्वारा भीतर कोठरी में से वायु आती थी और इनके लिये इस द्वार में छेद बने थे। जिसमें इन नलियों द्वारा वायु भली भांति आ सके इस लिये "निगाहक" समुद्रतल से लगभग ४० फीट ऊपर उठा लिया गया। अब हमलोग छत वाला द्वार खोल कर रस्सी पकड़ कर नीचे उतर गए। कुछ देर तक तो मुझे बड़ा कष्ट मालूम हुआ। जल के दबाव से मेरे कान में भयानक शब्द सुनाई पड़ते थे, परन्तु थोड़ी ही देर में मुझे इसकी सहन पड़ गई।

मैंने फरकराम को पुकारा, परन्तु मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ जब कि उन्होंने मेरे पास खड़े रह कर भी कोई उत्तर नहीं दिया। मैं अनुमान ही कर रहा था कि यहां कदाचित् जल के दबाव के कारण शब्द सुनाई नहीं पड़ता, कि इतने ही में फरकराम ने अपना सिर मेरे सिर में लगा कर यही बात कही और कहा कि जब कभी तुम्हें कुछ कहना हो तो इसी प्रकार से सिर में सिर मिला कर कहना।

बरन डूबे हुए जहाज़ पर चढ़ गया था, अतएव फरकराम के पीछे पीछे मैं भी उसपर चढ़ने लगा। मेरे चारों ओर बहुत सी बड़ी बड़ी मछलियां तैर रही थीं, जिससे मुझे बड़ा डर लगता था। परन्तु सौभाग्यवश इनमें कोई भी हमलोगों से न बोली। इस जहाज़ पर पहिली वस्तु हमलोगों को एक तोप मिली, जिससे फरकराम ने अनुमान किया कि यह सम्भवतः डाकूलोगों का जहाज़ है। यह अनुमान पीछे से सत्य ही निकला। जब हम लोग जहाज़ के कमरे में गए तो वहां टेबुल के चारों ओर छ मनुष्यों के पंजरों को देखा। इस टेबुल पर एक बड़ी लोहे की सन्दूक थी और उसके सामने अशर्फी का बड़ा ढेर लगा था। ऐसा जान पड़ता था कि जिस समय यह जहाज़ डूबा, उस समय ये डाकू आपस में बँटवारा कर रहे थे। हमलोगों ने इस जहाज़ के प्रत्येक भाग को इसलिये खोजडाला कि कहीं और भी कुछ धन न हो। परन्तु हमलोगों को कुछ मनुष्यों के पञ्जर तथा शस्त्रों के अतिरिक्त और कुछ न मिला। अतः हमलोग इन अशरफियों को अपने 'निगाहक' पर ले जाने का उपाय सोचने लगे। बरन पहिले ही

से अपने साथ एक थैला लेआया था। अतएव उसने अशर्फियां उसी थैली में भर लीं और जो शेष रह गईं, उसे उस लोहे वाली सन्दूक के ढकने में रख हमने और फरकराम ने मिल कर उसे उठा लिया।

हमलोग इस डाकुओं के जहाज़ से उतर कर तीन ही चार कदम चले होंगे कि बरन अपनी अशर्फियों का थैला पटक, बड़े भय से 'निगाहक' के लटकते हुए रस्से की ओर लपका। हमलोगों ने भी शीघ्र हो उसके भय का कारण देखा, तथा अशर्फी का ढकना पटक, उसका अनुगमन किया। एक बड़ी भारी मछली, जिसकी नाक पर तलवार के धार ऐसी कोई नोकीली वस्तु थी, हमलोगों की ओर लपक रही थी। यह मछली हमलोगों के बहुत ही निकट आ गई थी; अतएव 'निगाहक' पर चढ़ जाना हमलोगों के असम्भव जान पड़ा और हमलोग निराश होकर अपना अपना छुरा निकल कर उससे लड़ने के लिये खड़े हो गए। यह मछली सीधी आते आते सहसा मुड़ी और हमलोगों के चारों ओर चक्कर लगाने लगी। कदाचित् आक्रमण करने का अवसर ढूंढ रही थी। कुछ देर चक्कर लगाने के पीछे अन्त को यह फिर सीधी होकर फरकराम पर लक्ष करके आई। परन्तु फुरतीले फरकराम सहसा उसके रास्ते में से ऐसे हट गए कि वह मेरे और उनके बीच होकर निकल गई। हमलोगों ने उसे योंही नहीं निकल जाने दिया, वरन् दोनों जनों ने दोनों ओर से भरपूर छुरा भी मारा, जिससे उसके शरीर से रक्त बह चला और वह ऊपर की ओर चक्कर देती हुई बड़े वेग से गई। उस समय हमलोगों के बड़ा भय था कि कहीं वह ऊपर जाते हुए हमारी सांस लेने की नलियों के न तोड़ दे। परन्तु सैाभाग्यवश ऐसा नहीं हुआ। थोड़ी ही देर में हमलोगों ने इस मछली के फिर नीचे आते देखा। हमलोग फिर सावधान हो गए। परन्तु इसबेर हमलोगों का भय व्यर्थ ही था, क्योंकि हमारे छुरों के लगने से वह मर गई थी और शीघ्र ही तल पर आ गिरी। अब फरकराम ने पदम से 'निगाहक' के नीचे समुद्रतल पर ले आने का सङ्केत किया और उसके नीचे आने पर हमलोग सुगमता से सब अशर्फ़ियां बटोर कर उस पर ले गए। पानी वाली कोठरी में जाकर बाहर छतवाला द्वार बन्द कर दिया गया और पानी यन्त्र द्वारा निकाल दिया गया। तब हम तीनों मनुष्य गोताखोरी के वस्त्र उतार कर भीतर आए। अशर्फ़ियों के गिनने से मालूम हुआ कि वे साठ हज़ार हैं। यह निश्चय किया गया कि सब लोग इसका समभाग करके बांटलें।

फरकराम कुछ कहा ही चाहते थे कि इतने में 'निगाहक' के बड़े जोर की टक्कर लगी, जिससे हमलोगों के पैर उखड़ गए। अपनेके सम्हालते ही हमलोग कांच की खिड़की की ओर देखने दौड़े। देखने से विदित हुआ कि यह टक्कर एक बड़ी भारी ह्वेल ने लगाई थी जो कि आकार में 'निगाहक' के बराबर थी। यह ह्वेल पुनः दूसरा धक्का लगाने के लिये हमलोगों की ओर बड़े वेग से आ रही थी। इससे हमलोगों के बड़ा ही भय हुआ। यदि यह दूसरा धक्का भी 'निगाहक' के बगल की ओर लगता तो वह अवश्य ही टूट कर टुकड़े टुकड़े हो जाता। परन्तु फुरतीले फरकराम ने बिजली की भांति शीघ्रता से 'निगाहक' का सिरा जिसमें एक बड़ा भारी शक्तिमान कीला लगा हुआ था, ह्वेल की ओर कर दिया। परन्तु यह कार्य कठिनता से समाप्त हुआ होगा कि ह्वेल ने दूसरा धक्का लगाया। इसबेर 'निगाहक' बड़े ज़ोर से हिलने लगा, जिससे हम लोगों के बड़ा भय हुआ। परन्तु थोड़ी ही देर पीछे जब हिलना बन्द हुआ और हमलोग खिड़की में देखने के गए, तो देखा कि कीला लगभग दस फीट के ह्वेल के शरीर में धंस गया था और ह्वेल मर गई थी। परन्तु इस मृतक ह्वेल के भारी बोझ के कारण हमारा 'निगाहक' अपने स्थान से हिल नहीं सकता था। अतएव यह आवश्यक हुआ कि इस ह्वेल के किसी भांति कीले से अलग करें।

इस कार्य के लिये पदम और बरन गोतेख़ोरी के वस्त्र पहिना कर भेजे गए और इन लोगों ने उस मछली को फरसों और छुरों से कुछ काल में काट काट कर नीचे गिरा दिया।

जल के नीचे एकबारगी इतनी घटनाएं हो जाने से सब लोगों ने यही उचित समझा कि अब जल के ऊपर ही ऊपर यात्रा की जाय। अब केवल पीतसागर में ही पहुंच कर फिर जल के नीचे यात्रा की जायगी। अतः जल का कुण्ड खाली कर दिया गया जिससे तुरन्त 'निगाहक' जल के तल पर आगया। इस समय सूर्य्य विस्तृत समुद्र पर बड़ी सुन्दरता से चमक रहा था।

चार दिन तक हमलोग यात्रा करते रहे। पांचवें दिन मध्याह्न के समय हमलोगों ने दक्षिण की ओर से एक अद्भुत प्रकार का पीला बादल उठते देखा जो एक बड़ी भारी आंधी थी। मैं जानता था कि समुद्र के इस भाग में आंधी कैसी प्रबल होती है। अतएव मेरे तो प्राण निकल गए। परन्तु फरकराम ने मुझे आश्वासन दिया और कहा कि इस आंधी से हमलोगों को कोई भय नहीं करना चाहिए, क्योंकि आंधी का प्रभाव केवल जल के तल से १०० फ़ीट नीचे तक रहता है। इसके नीचे आंधी का कोई प्रभाव नहीं देख पड़ता। अतएव यदि हमलोग जल के तल से १०० फ़ीट नीचे उतर चलेंगे, तो हमको आंधी कुछ जानही नहीं पड़ेगी। फरकराम ने अपने हाथ में एक आकाश-तोलन-यन्त्र ले लिया और जब आंधी अत्यन्त ही निकट आ गई तो हमलोगों ने 'निगाहक' को जल के लगभग १०० फ़ीट नीचे कर दिया। यहां पर वास्तव में जैसा फरकराम ने कहा था वैसा ही हुआ। इस जगह जल पूर्णतया स्थिर था और हमलोगों को आंधी का कोई भी चिह्न नहीं देख पड़ता था, यद्यपि आकाशतोलन यन्त्र द्वारा ज्ञात होता था कि आंधी बड़े ही प्रचण्ड बेग से चल रही है। पूरे डेढ़ घण्टे तक फरकराम अपने हाथ में आकाश-तोलन-यन्त्र लिए रहे और तब उन्होंने कहा कि अब आंधी चली गई, अब हमलोग ऊपर चल सकते हैं। अतः जलकुण्ड खाली कर दिया गया और 'निगाहक' तुरन्त उछल कर जल के तल पर आ गया। यहां सूर्य पूर्णतया प्रकाशित हो रहा था और हमलोग बीती हुई आंधी के बादल उत्तर की ओर अब तक देख सकते थे। आंधी के पहिले जिस समय हमलोग 'निगाहक' को नीचे ले गए थे, उस समय हमलोगों को जल के पृष्ठ पर कहीं कोई जहाज़ नहीं दिखाई दिया, परन्तु इस समय लगभग आध मोल की दूरी पर हमलोगों ने एक डूबता हुआ जहाज़ देखा, जिसके मस्तूल तथा रस्से इत्यादि सब टूट गए थे। अतएव हमलोगों ने 'निगाहक' को उसकी ओर बड़ी शीघ्रता से दौड़ाया। निकट पहुंचने पर इसमें दो मनुष्य दिखाई दिए जो निगाहक को आते देख कर, हमलोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिये बड़ी उत्सुकता से अपना हाथ हिला रहे थे। पूछने से विदित हुआ कि इन दोनों में से एक उस जहाज़ का सहकारी कप्तान, और दूसरा रसोइयां था। उन्होंने कहा कि यह जहाज़ आम्रदेश से वाणिज्य का माल लेकर आ रहा था कि आंधी में पड़ कर उसकी यह दशा हुई। इसके सब मल्लाह बह गए और अब केवल येही दो मनुष्य शेष बच गए थे। अब इस जहाज़ के डूबजाने में कुछ भी देरी न थी, अतएव फरकराम ने 'निगाहक' को इस जहाज़ के निकट कर दिया और ये दोनों मनुष्य इसपर कूद आए। अब फरकराम ने 'निगाहक' को बड़ी शीघ्रता से इस जहाज़ से दूर हटाया,। हमलोग बहुत दूर नहीं पहुंचे थे कि जहाज़ को पानी के नीचे जाते देखा।

फरकराम इन दोनों नए व्यक्तियों को यह नहीं दिखलाया चाहते थे कि 'निगाहक' किन किन यन्त्रों द्वारा किस प्रकार से जल के नीचे चल सकता है। अतएव हमलोगों को जो पहिली पहिल भूमि दिखाई पड़ी, वहां इन्हें उतार दिया और वहां से ये दोनों एक जहाज़ में बैठ कर सुगमता से अपने देश को लौट गए।

पीतसागर पहुंचने तक हमारी शेष यात्रा में ऐसी कोई असाधारण बात नहीं हुई जो उल्लेख करने योग्य हो। हमलोग निर्विघ्न यथा समय पीत सागर में पहुंच गए। वहां हमलोगों को हज़ारों चीनी और जापानी जहाज़ मिले,—कोई मोती निकालने वाले, कोई मछलियों का शिकार करने वाले, कोई स्पञ्ज निकालने वाले, इत्यादि, इत्यादि।

अब हमलोगों को मोती की गुफा की खोज के लिये 'निगाहक' को फिर जल के नीचे ले जाना पड़ा। प्रसिद्ध पीतसागर बहुत गहिरा नहीं है, कोई दोही सौ फीट नीचे आने पर 'निगाहक' समुद्र तल पर आ लगा। यह बालू का एक बड़ा सुन्दर स्थान था, जिसमें ठौर ठौर पर बहुत से सुन्दर तथा दुष्प्राप्य सीप और समुद्री पौधे लगे हुए थे, जिन्हें देख कर हमलोग चकित हो गए। हमलोग इस मनोहर भूमि से ऐसे मोहित हो गए थे कि सदैव इसे ही देखा करने की इच्छा होती थी। परन्तु हमलोगों का मुख्य उद्देश्य मोतियों की गुफा खोजने का था। अतएव 'निगाहक' को धीरे धीरे आगे भी बढ़ाना ही पड़ा। कुछ काल तक तो 'निगाहक' ऐसे ही दृश्यों पर होके धीरे धीरे चलता गया। इसके उपरान्त सहसा दृश्य बदल गया। अब बलुए मैदान का अन्त हो गया और हमलोग चित्र विचित्र के मूंगों के भारी बन में पहुंच गए। यह उससे भी अधिक सुन्दर और मनोरञ्जक दृश्य था। मूंगे के कीड़ों ने अनेक भांति के अपूर्व और मनोहर वृक्ष बनाए थे। उनमें से कोई मनुष्य के आकार के, कोई देव के आकार के, कोई पशु और कोई पक्षी के आकार के थे। एक स्थान पर हम लोगों ने देखा कि मूंगे के वृक्षों का एक महल बन गया था, जो ऐसा जान पड़ता था कि मानों किसी मनुष्य ने बनाया हो। कई घण्टों के पीछे यह मूंगे का बन भी समाप्त हुआ और फिर स्वच्छ उज्वल बालू का मैदान आरम्भ हुआ। यहां पर हम लोगों की दृष्टि एक नङ्ग धड़ङ्ग मनुष्य पर पड़ी, जिसने समुद्र तल पर पहुंच कर एक मुट्ठी घास उठाई। यह एक जापानी मोती निकालनेवाला जान पड़ता था। उसकी दृष्टि तुरन्त 'निगाहक' पर पड़ी, जिसे उसने बड़े ही आश्चर्य से देखा और उसे कोई अद्भुत समुद्री जन्तु समझ कर वह इतना डरा कि बड़ी ही शीघ्रता से ऊपर चला गया। हम लोगों ने विचार किया कि यह ऊपर जाकर कहेगा कि मैंने एक बड़ा भारी भयानक जन्तु देखा है और कदाचित अब यहां कोई जापानी गोताखोर कभी नहीं आवेगा।

'निगाहक' बहुत धीरे धीरे आगे बढ़ता जाता था। फरकराम ने उसे अन्त में बिलकुल ठहरा दिया और तब उसने बरन से गोताखोरी के वस्त्र लाने को कहा। उसने कहा कि मैं स्वयं बाहर चल कर मोती खोजा चाहता हूं। इस पर मैंने भी उसके साथ चलने की इच्छा प्रगट की और उसके कहने से इस बेर वह, मैं और पदम भी चलने को प्रस्तुत हो गए। बरन को 'निगाहक' पर रहने की आज्ञा दी गई। इस बेर के गोताखोरी के वस्त्र पहिले जैसे नहीं थे। उनमें सांस लेने के लिये नलियां नहीं लगी थीं। परन्तु इस बेर हममें से हर एक के पीठ पर प्राणप्रद वायु उत्पन्न करनेवाला एक यन्त्र था। इससे हम लोगों को बड़ी सुगमता थी। हम लोग श्वास लेने के लिये 'निगाहक' के आश्रित नहीं थे और स्वेच्छा पूर्वक उससे जितनी दूर चाहें जा सकते थे।

अब 'निगाहक' तल पर टिका दिया गया और हम लोग उसी पूर्व वर्णन किए हुए मार्ग द्वारा बाहर हुए और मोतियों की खोज करने लगे। मोती बहुधा एक विशेष प्रकार के सीप के भीतर मिलते हैं। परन्तु पीतसागर में ये प्रायः भूमि पर पड़े हुए मिलते हैं। मेरा अनुमान है कि सहस्रों वर्ष की पुरानी सीपों के गल जाने के कारण ये अलग हो कर इस प्रकार से मिलते हैं। थोड़ी ही देर में फरकराम ने एक बड़ा ही सुन्दर मोती पाया जो कि निस्सन्देह कई सौ अशर्फियों का माल

था। इसके उपरान्त पदम को भी एक अच्छा मोती मिला। परन्तु उन दोनों मोतियों के अतिरिक्त हम लोगों के बहुत खोजने पर भी और कुछ हाथ नहीं लगा। इसका कारण मैं यह समझता हूं कि इस स्थान को वहांवाले गोताखोरों ने अवश्य भली भांति छान डाला होगा।

हम लोग 'निगाहक' से कुछ दूर निकल आए थे। हमें जल के नीचे किसी प्रकार का कष्ट अथवा भय नहीं था, क्योंकि हम लोगों के साथ श्वास लेने के लिये वायु बनानेवाला यन्त्र था, जिसको किसी प्रकार की हानि पहुंचना तनिक कठिन कार्य था। हम लोगों को अभी तक कोई घातक जन्तु भी नहीं देख पड़ा था, यद्यपि इसके लिये भी फरकराम अपने साथ एक जल में चलानेवाली बन्दूक लेते आए थे। परन्तु अब एक ऐसी घटना हुई जिससे उन्हें इसका प्रयोग करना पड़ा।

पदम बालू में मोती खोजते खोजते एक लम्बी ऊंची भूमि के निकट पहुंचा जो लगभग एक फुट ऊंची होगी। ऐसा जान पड़ता था कि किसी कारण से यहां बालू के बैठते बैठते यह भूमि ऊंची हो गई है। पदम को यह स्वप्न में भी ध्यान नहीं था कि इसके नीचे कोई वस्तु है। परन्तु ज्योंहीं वह अपना हाथ उस पर रक्खा चाहता था त्योंहीं वह चलने लगी। भूमि को चलते देख उसे बड़ा ही आश्चर्य हुआ और वह थोड़ी देर के लिये रुक गया। यह भूमि शीघ्र ही फिर स्थिर हो गई। कौतूहलवश पदम ने उसमें अपना छुरा धंसा दिया जिसका परिणाम बड़ा ही भयानक हुआ। तुरन्त ही बालू दूर हो गया और उसमें से एक बड़ा भारी हरा, लम्बा तथा सांप के सदृश जन्तु निकल आया, जिसने पदम को अपने फेंटे में लपेट लिया। बिचारे पदम ने फरकराम को कई बेर सहायता के लिये बड़ी जोर जोर से पुकारा। फरकराम जल के नीचे उसे सुन नहीं सकता था, परन्तु जल में जो हलचल हुआ उससे उसका ध्यान उस ओर गया और उसने बड़े ही आश्चर्य के साथ उस जन्तु को पदम को फेंटे में लपेटे हुए और उसके सिर पर अपना मुंह बाए हुए देखा। फरकराम ने बड़ी ही शीघ्रता के साथ अपनी बन्दूक इस जन्तु पर ताक के छोड़ी। सूई उसके नीचे वाले जबड़े में लगी और उसके स्फोटन से वह उड़ गया। इससे यह जन्तु महाकोप से पदम को और भी अधिक जोर से लपेटने लगा। परन्तु फरकराम ने फिर बड़ी शीघ्रता से दूसरी सूई छोड़ी। इस बेर वह उसके गले मे लगी और उसकी मूड़ी उड़ गई। वह शीघ्र मर गया और पदम के प्राण बच गए। कौतूहलवश हम लोगों ने इस जन्तु को नापा और बड़े ही आश्चर्य का विषय है कि इसे पूरा ५० फीट लम्बा पाया। इसके बड़े बड़े मछलियों की नाईं पर तथा फनदार पीठ से ज्ञात हुआ कि यह समुद्री सांप नहीं है। फरकराम ने कहा कि यह एक प्रकार का जलव्याल है। यह बड़ा ही प्राचीन है। यह व्याल सहस्रों वर्ष का होगा। ऐसे जन्तु सदैव समुद्र के तल पर रहते हैं। कभी जल के ऊपर नहीं आते और यही कारण है कि हमलोगों के देखने में नहीं आते।

इस समय तक हम लोग 'निगाहक' से पूरे पाव मील दूर चले आए थे। फरकराम ने अब लौट चलना उचित समझा और ऐसा करने के लिये हम लोगों से सङ्केत किया। अतएव हम लोग लौट पड़े। 'निगाहक' अब थोड़ी ही दूर रह गया था कि हम लोगों ने फिर एक भयानक बात देखी।' बहुत सी बड़ी बड़ी शार्क मछलियां हम लोगों के ऊपर जल में मड़रा रही थीं। इसमें कोई सन्देह नहीं था कि ये हम लोगों पर आक्रमण किया चाहती थीं। ये इतनी बड़ी बड़ी थीं कि इनमें से कोई एक भी किसी मनुष्य को समूचा निगल जा सकती थीं। अतएव हम लोग बड़ी शीघ्रता से 'निगाहक' की ओर दौड़ने का यत्न करने लगे। जल में दौड़ने का यत्न करना एक विलक्षण कार्य है। इसका अनुभव केवल उन्हीं को हो सकता

है जो कभी जल में हले हों। परन्तु फिर भी हम लोग बहुत शीघ्र चले ग्रैार ठीक उसी समय 'निगाहक' की छत पर पहुंचे जब कि इनमें से एक मछली हम लोगों की ग्रोर लपकी थी। पद्म इससे बाल ही बराबर बच गया। परन्तु ग्रब हम लोग जलवाली कोठरी में पहुंच गए ग्रैार उसके बाहरवाला द्वार बन्द कर दिया। तब शीघ्रता से उसका पानी निकाल हम लोग भीतरी कमरे में ग्रा गए। खिड़की में से देखने से ज्ञात हुग्रा कि ये मछलियां ग्रब 'निगाहक' के चारों ग्रोर मड़रा रही थीं ग्रैार उसपर भी ग्राक्रमण करना चाहती थीं। ग्रतएव फरकराम शस्त्रगृह में गया। वहां एक बन्दूक भर कर उसके मुख को एक रबर के नैापाइर्वमुख में डाला जो कि उसके खूब चिमाचिम बैठ गया। तब इसने मछलियों पर ताक के यह बन्दूक छोड़ी। इससे ग्रास पास का पानी खैालने लगा ग्रैार एक ही बार के बन्दूक छोड़ने से दस बारह मछलियां मर गईं ग्रैार शेष डर कर भाग गईं।

ग्रब हमलोगों ने फिर ग्रपने मोती की गुफा को खोजने का विचार किया ग्रैार 'निगाहक' फिर ग्रागे बढ़ाया गया। कई दिन तक तो हमलोग इसी भांति यात्रा करते रहे ग्रैार हमलोगों पर कोई ऐसी विशेष घटना नहीं हुई। एक दिन हमलोग एक गहिरे स्थान पर जा रहे थे तो हमलोगों ने देखा कि समुद्रतल का रूप बदल गया था। ग्रब वहां की बलुई भूमि इस प्रकार की थी जैसी कि मोती पाए जाने वाले स्थानों की होती है। मैंने विचारा कि यदि मोती की गुफा वास्तव में है तो हमलोग ग्रवश्य ही उसके निकट ही हैं।

सहसा हमलोगों ने बहुत से रस्से जिसमें भारी भारी बोभ बँधे हुए थे, नीचे ग्राते देखे। हमलोगों ने तुरन्त ही जान लिया कि ये वेही रस्से हैं जिनका प्रयोग गोताख़ोर लोग गहिरे जल में शीघ्र पहुंच जाने के लिये करते हैं। शीघ्र ही गोताख़ोर लोग भी इन्हीं रस्सों पर दिखाई पड़े। ये लोग बालू में कुछ सेकेण्ड तक टटोल कर ग्रपनी मुट्ठियां भर कर कङ्कड़ी ग्रादि बटोर कर ऊपर चले जाते थे। यह बड़ा सुन्दर ग्रैार मनोहर दृश्य था। जब कभी किसी गोताख़ोर की दृष्टि 'निगाहक' पर पड़ जाती तो वह बड़ा भयभीत होकर तुरन्त बड़ी शीघ्रता से ऊपर चला जाता, जिससे हमलोगों को बड़ी हंसी ग्राती। 'निगाहक' ग्रागे बढ़ता जाता था ग्रैार हमलोगों को कुछ दूर तक ये दृश्य मिलते गए। परन्तु ग्रब हमलोग इतने गहिरे स्थान पर पहुंच गए जहां पर स्पष्ट था कि गोताख़ोर नहीं ग्रा सकते थे। यहां पर यदि खोजा जाता तो ग्रवश्य बहुत मोती मिलते। परन्तु हमलोग विचारते थे कि मोतियों को गुफा समीप ही है ग्रैार इसके ढूंढ निकालने की इच्छा हमलोगों में इतनी प्रबल थी कि 'निगाहक' को ठहराना उचित न समभा गया। मैं उसके लिये उत्सुकता से चारों ग्रोर देख रहा था कि सहसा मेरी दृष्टि एक मूङ्गे के बन पर पड़ी जो एक बड़ी भारी गुहा की भांति था। न जाने क्यों मेरा विश्वास हुग्रा कि ग्रवश्य यही हमारे मोतियों की गुफा होगी। मैंने ग्रपना विचार सभों से प्रगट किया। वे लोग भी मुभसे इस विषय में पूर्णतया सहमत तथा बड़े प्रसन्न हुए। यह गुफा इतनी चैाड़ी तथा ऊंची थी कि 'निगाहक' उसके भीतर भली भांति चल सकता था। परन्तु फरकराम ने उसे उसके भीतर ले जाना उचित न समभा। उसने पद्म से लङ्गर डाल देने को कहा ग्रैार 'निगाहक' इसी गुफा के मुंह पर खड़ा कर दिया गया। इससे बहुत सी चित्र बिचित्र की सुन्दर सुन्दर मछलियां जो कि इनके निकट थीं, डर कर भागीं। ग्रब हमने, फरकराम ने, ग्रैार बरन ने गोताखोरी के वस्त्र पहिने ग्रैार पद्म को 'निगाहक' पर रहने की ग्राज्ञा दी गई। इस बेर हमलोगों ने ग्रपने साथ छुरीं ग्रैार मोती बटोरने के लिये थैलों के ग्रतिरिक्त एक एक बन्दूक भी ले ली।

ग्रब हम तीनों जनों ने 'निगाहक' से उतर कर इस गुफा में प्रवेश किया। थोड़ी दूर तक तो हम

लोगों को 'निगाहक' से बिजली का प्रकाश मिलता गया, परन्तु मार्ग घुमावदार होने के कारण अब उसमें उसका प्रकाश नहीं आ सकता था और हम लोगों को अपने अपने टोप पर के बिजली के प्रकाश पर निर्भर होना पड़ा। हमलोग ज्यों ज्यों इसके भीतर बढ़ते जाते थे, त्यों त्यों हमें अधिक अद्भुत दृश्य दिखाई देते थे। परन्तु यद्यपि हमलोग बालू में बड़ी सावधानी से खोज करते जाते थे, पर अभी तक हमलोगों को एक भी मोती नहीं मिला, जिससे इसके मोतीवाली गुफा होने में कुछ सन्देह होता था।

निदान हमलोग एक ऊंची और गुम्बजवाली कोठी में पहुंचे जो कि बड़ी ही सुन्दर और मनोहर थी। यहां के सुन्दर उजले मूंगे के वृक्ष हमलोगों के टोप के प्रकाश से बड़े चमक रहे थे। वास्तव में, ऐसा सुन्दर दृश्य कदाचित् किसी मनुष्य ने नहीं देखा होगा। यहां पर फरकराम ने अपने पैर के नीचे पड़ी हुई एक वस्तु उठाई। यह एक मोती था। इतना बड़ा मोती हम में से किसीने कभी नहीं देखा था। हमलोगों को इसपर बड़ी प्रसन्नता हुई और अब यह सन्देह नहीं रह गया कि यह मोती की गुफा नहीं है। हम सब बालूओं में बड़ी उत्सुकता के साथ खोजने लगे। हमलोगों ने कई घण्टों तक खोजा और हमें बहुत से तथा बड़े अमूल्य अमूल्य मोती मिले, और यदि हमलोग और खोजते तो और बहुत से भी पाते। वास्तव में यह गुफा मोतियों का भंडार ही जान पड़ती थी; परन्तु हमलोगों को 'निगाहक' से आए बहुत देरी हो गई थी, अतएव फरकराम की सम्मति से हमलोगों ने लौट चलना उचित समझा। परन्तु इतने ही में हमें एक बड़ा शब्द सुनाई दिया। पानी में बड़ी खलबली दिखाई दी और गुफा हिलने लगी। पहिले तो हमलोगों ने सोचा कि अवश्य यह भूकम्प है, पर फरकराम ने शीघ्र ही विचार कर कहा कि मुझे जान पड़ता है कि पदम इस समय किसी बड़ी विपत्ति में पड़ गया है और इसकी सूचना हमलोगों को देने के लिये उसने बन्दूक छोड़ी है। अतएव हमलोग जल में जितनी शीघ्रता से चल सकते थे, उतनी शीघ्रता से गुफा के द्वार की ओर चले। परन्तु हमलोग थोड़ी ही दूर गए थे कि दूसरा धक्का आया। इसे ध्यानपूर्वक देखने से बिदित हुआ कि यह वास्तव में जल के बन्दूक ही का धक्का है और फरकराम का कथन सत्य जान पड़ा। अतएव हमलोगों ने अपनी चाल और भी बढ़ा दी। यहां आती बेर हमलोगों को रास्ता कुछ भी नहीं जान पड़ा था। पर इस बेर वह बहुत ही बड़ा जान पड़ता था और अन्त में जब हमलोग गुफा के मुंह के निकट पहुंचे, तो हमलोगों को 'निगाहक' की बिजली का प्रकाश न देख कर बड़ा ही आश्चर्य हुआ। परन्तु इस आश्चर्य की उस समय तो सीमा ही न रही जब कि गुफा के बाहर आकर हमलोगों ने 'निगाहक' ही को न पाया। यह देख कर हमलोगों के आगे अन्धकार छा गया। हमलोग इसके अलोप होा जाने का कारण नहीं विचार सकते थे। और सब से बढ़ कर तो यह बात थी कि हमलोग जीवित कैसे रह सकते थे। भूमि हमलोगों से पूरे पचास मील दूर थी और हमलोगों के यहां से निकलने का कोई उपाय नहीं देख पड़ता था। यह सत्य है कि जब तक वायु उत्पन्न करने वाला यन्त्र काम करता रहता तब तक हम लोग जीवित रह सकते थे। परन्तु यह कब आशा की जा सकती थी कि यह यन्त्र सदैव काम करता रहेगा। जब यह बन्द हो जाता तो हमलोगों की बड़ी ही भयानक मृत्यु होती।

परन्तु आशा बड़ी प्रबल होती है। अतएव हमलोग बैठ कर यह आशा करने लगे कि कदाचित पदम 'निगाहक' को लेकर फिर आवे और इस प्रकार अब 'निगाहक' की व्यर्थ प्रतीक्षा करते करते रात होगई।

धीर गम्भीर और बुद्धिमान फरकराम इस आपत्ति में हमलोगों की भांति घबरा नहीं गया था। वह चुपचाप हमलोगों को बचाने की युक्ति सोच

रहा था और अन्त में उसने मुझसे कहा कि यदि 'निगाहक' नहीं भी लौटा तो भी हमलोगों के प्राण किसी न किसी भांति बच जायंगे। उसने कहा कि इस स्थान के आस ही पास बहुत से गोताखोर मोतियों की खोज में नीचे आते हैं। अतएव उन्हीं के साथ उनके रस्से को थाम कर ऊपर चला जाना कठिन नहीं होगा। वास्तव में इस भांति हमलोग अपने प्राण बचा सकते थे और इससे हमलोगों को बड़ी प्रसन्नता भी हुई, परन्तु साथ ही इसके 'निगाहक' का लोप हो जाना कम दुःख की बात नहीं थी। अतएव हमलोग सबेरा हो जाने पर भी घण्टों तक इस आशा में बैठे रहे कि कदाचित् 'निगाहक' अब आवे। परन्तु अपनी आशा को निष्फल ही देख, हार कर हम लोग उठने ही को थे कि हमलोगों को प्रकाश दिखलाई दिया और शीघ्र ही 'निगाहक' नीचे उतरता हुआ देख पड़ा। इस समय हमलोगों को जो आनन्द प्राप्त हुआ उसका वर्णन करना असम्भव है। हमलोग बड़ी ही उत्सुकता से 'निगाहक' की ओर दौड़े और शीघ्र ही उसके भीतर जा पहुंचे।

अब हमलोगों ने पदम से उसका सब वृत्तान्त पूछा, जिससे विदित हुआ कि जब हमलोग मोतियों की गुफा में गए और बहुत समय बीतने पर भी न लौटे तो उसने बिचारा कि हमलोग अवश्य बहुत थके मांदे होकर लौटेंगे। अतएव उसने हमलोगों के लिये भोजन बना रखने का विचार किया; और वह इसके लिये आग सुलगा रहा था कि 'निगाहक' को इतनी जोर से धक्का लगा कि पदम लुड़क गया। सम्हल कर उठते ही वह खिड़की की ओर देखने के लिये दौड़ा और वहां उसने जो कुछ देखा उससे उसके रोएं खड़े हो गए। एक अष्टपद, जो आकार में पर्वत के समान था, 'निगाहक' को अपने प्रबल हाथों से खींच रहा था। 'निगाहक' उसके सामने एक खिलौने की भांति जान पड़ता था। कुछ देर तक तो पदम किंकर्तव्यविमूढ़ खड़ा रहा, परन्तु अन्त में उसका ध्यान पानी में चलाने वाली बन्दूक पर गया। वह इसे अष्टपद पर नहीं चला सकता था। पर उसने सोचा कि यदि फरकराम को उसकी आपत्ति किसी भांति विदित होजायगी तो वह अवश्य आकर कुछ न कुछ उपाय करेगा। अतएव उसने दो गोले मोतियों की गुफा पर चलाए जिसका वर्णन मैं ऊपर कर चुका हूं। परन्तु अष्टपद अब भी बराबर 'निगाहक' को खींचता गया और बिचारा पदम इस जन्तु से छुटकारा पाने के लिये कोई उपाय न सोच सका। उसका इतना साहस नहीं होता था कि गोताखोरी के वस्त्र पहिन कर और बाहर निकल कर उसपर गोली चलावे। तब पदम ने सोचा कि कदाचित् 'निगाहक' को जल के ऊपर ले चलने से यह जन्तु इसे छोड़ दे। ऐसा विचार उसने तुरन्त जलकुण्ड खाली कर दिया और 'निगाहक' इतने भारी जन्तु के बोझ के रहते भी धीरे धीरे ऊपर उठने लगा और अन्त को जल के ऊपर पहुंच गया। यहां पर मोती निकालनेवाले गोताखोरों की कई नौकाएं थीं, परन्तु सब की सब इस भयानक जन्तु को देख कर दूर भागीं। पदम निराश होगया। उसे हमलोगों का स्मरण करके बड़ा दुःख हुआ। परन्तु वह करता ही क्या? जल के ऊपर आकर अष्टपद और भी आनन्दित जान पड़ता था। वह तैरता था और जिधर चाहता था उधर 'निगाहक' को खींच ले जाता था। उसने 'निगाहक' की छत पर के जङ्गले आदि भी तोड़ डाले। परन्तु वह उसकी फ़ौलाद की छत नहीं तोड़ सकता था और इसी कारण से पदम के प्राण बचे हुए थे। अब रात हो गई, परन्तु इस जन्तु ने अब तक 'निगाहक' को नहीं छोड़ा। वह रात भर उसी भांति उसे समुद्र में इधर से उधर और उधर से इधर खींचता रहा। बिचारा पदम पागल सा होगया। उसने बैठे बैठे एक बेर बिजली के प्रकाश का सारा अस्त्र इस जन्तु की आंख पर डाला। इसका उसपर कुछ प्रभाव दिखाई दिया। इससे वह कुछ हिचका और कभी कभी ऐसा जान पड़ता था कि 'निगाहक' को छोड़ देगा। परन्तु

उसके ऐसा करने के पहिले दिन का प्रकाश फैल गया। अब पदम पूर्णतया निराश हो गया था, कि अष्टपद कदाचित् थक कर 'निगाहक' को छोड़ कर जल के नीचे चला गया। पदम बड़ा ही प्रसन्न हुआ और तुरन्त यन्त्रगृह में जाकर 'निगाहक' की चाल जितनी शीघ्र हो सकती थी उतनी कर दिया, जिसमें वह इस जन्तु से शीघ्र ही बहुत दूर चला जाय। अतएव थोड़ी ही देर में वह, उस स्थान से जहां कि अष्टपद ने डुब्बी मारी थी, कोसों दूर निकल गया।

परन्तु पदम जानता था कि उसकी दुर्घटना का अभी अन्त नहीं हुआ है, क्योंकि यह अत्यन्त आवश्यक था कि बिना कुछ समय खोए हुए वह हमलोगों से मिले। परन्तु वह यह नहीं जानता था कि वह हमलोगों के लिये किस ओर जाय। अस्तु, वह ईश्वर पर भरोसा करके अपने अनुमान के अनुसार 'निगाहक' को ले चला और जब उसने सोचा कि अब हम ठीक स्थान पर आ गए हैं तो उसने 'निगाहक' को डुबाया और धन्य है उस सर्वशक्तिमान जगदीश्वर की महिमा कि यद्यपि पदम को यह स्वप्न में भी विश्वास नहीं था कि मैं ठीक उसी स्थान पर उतरूंगा जहां कि फरकराम आदि मेरी प्रतीक्षा करते होंगे, परन्तु ऐसा ही हुआ जैसा कि हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं।

अब हम लोगों की यात्रा का उद्देश्य पूरा हो गया था। हम लोगों ने घर लौटने के पहिले दो चार दिन होङ्कोङ्ग ऐसे सुहावने देश में ठहरना उचित समझा। अतएव 'निगाहक' होङ्कोङ्ग की ओर फेरा गया और दूसरे दिन प्रातःकाल हम लोग होङ्कोङ्ग बन्दर के निकट पहुंच गए। परन्तु यहां पर 'निगाहक' को देख कर एक बड़ी हलचली मच गई। इसका कारण कदाचित यह था कि एक तो उस पर किसी देश का झंडा नहीं था और दूसरे उसका आकार देखकर लोगों को सन्देह हो सकता था कि वह टारपेडो या डाइनामाइट की डोंगी होगी। अतएव हम लोगों ने शीघ्र ही अपनी ओर चीन के जङ्गी जहाज़ को आते देखा। यह बात स्पष्ट थी कि वे हमें हानि पहुंचाया चाहते थे। फरकराम ने कुछ सोच विचार कर उन लोगों से लड़ना उचित न समझा उसने इस बन्दर के निकट एक ओर अपने ही देश के एक जङ्गी जहाज़ को खड़े देखा, जिस पर कि उसी के देश का झण्डा फहरा रहा था। उसने इसी जङ्गी जहाज़ की शरण लेनी उचित समझी। अतएव उसने 'निगाहक' को इसी जहाज़ की ओर फेरा और उसकी चाल बढ़ा दी। इस पर चीनी लोगों ने सोचा कि हम लोग भाग रहे हैं और हम लोगों की ओर एक गोला छोड़ा। फरकराम ने इस समय बड़ी आपत्ति देखी। उसने बरन से कहा कि अपने देश का झण्डा 'निगाहक' पर लगा दो। बरन ने तुरन्त ऐसा ही किया, परन्तु इसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। चीनी लोगों को विश्वास हो गया था कि 'निगाहक' कोई टारपेडो या डाइनामाइट की डोंगी अवश्य है। अतएव अब 'निगाहक' की ओर दनादन गोले बरसने लगे। अब हम लोगों ने यही उचित समझा कि 'निगाहक' को जल के नीचे से स्वदेशी जङ्गी जहाज़ के निकट ले चलें और इसी प्रकार हम लोग सुगमता से उसके निकट पहुंच गए। चीनी लोगों को तोपों के धुएं में हमारी यह कार्रवाई विदित नहीं हुई। हमारे देश के जङ्गी जहाज़ का सर्दार फरकराम का एक जान पहिचानी था। अतएव उसने फरकराम का बड़ा ही स्वागत किया। अब चीनी लोगों को अपनी भूल विदित हो गई और उनके सर्दार ने फरकराम से अपनी अनुचित कार्रवाई के लिये क्षमा मांगी। हम लोग तीन दिन तक होङ्कोङ्ग में ठहरे। चौथे दिन प्रातःकाल स्वदेशी जङ्गी जहाज़ के सर्दार से बिदा हो अपने देश की ओर यात्रा की।

दो दिन तो हम लोग निर्विघ्न चले गए। परन्तु तीसरे दिन एक ऐसी घटना हुई कि जिससे हम लोगों को बड़ी ही हानि तथा दुःख हुआ। इस दिन हम लोगों के मार्ग में कुछ चीनी जहाज़ दिखाई दिए जो वाणिज्य के जहाज़ जान पड़ते थे।

अतएव हम लोग निधड़क थे। परन्तु ज्योंही हम लोग उनके बीच में पहुंचे, त्योंहीं उन्होंने चारों ओर से हमें घेर लिया और इसके पहिले कि हम लोगों को उनकी बुरी इच्छा ज्ञात भी हो, सबके निकट वाले जहाज़ से, जो लगभग ५० गज की दूरी पर होगा। एक गोला आया, यह गोला 'निगाहक' के जलकुण्ड में होकर निकल गया, जिस से अब हम लोग उसे स्वेच्छापूर्वक नहीं डुबा सकते थे, जब तक कि उसे सदैव के लिये न डुबावें। फरकराम के मुंह से भय टपकने लगा। हम लोग चारों ओर से इन जहाज़ों से घिरे हुए थे, अतएव जिधर जाते उधर ही गोलों से हमारा स्वागत होता।

अब हम लोगों के लिये केवल दोही बातें थीं; लड़ना वा मरना। अतएव फरकराम ने पानी में चलानेवाली बन्दूक से काम लिया। उसने पहिले सबसे निकट वाले जहाज़ पर एक गोला चलाया, जिसने फट कर कई गज लम्बा चौड़ा छेद कर दिया। यह जहाज़ शीघ्रता से डूबने लगा और इसके सब जहाज़ी लोग भय से जल में कूदने लगे। फरकराम ने तुरन्त दूसरे जहाज़ पर गोला चलाया उसकी भी वही दशा हुआ और वह दोही तीन मिनट में सब जहाज़ियों समेत जल में निमग्न हो गया। परन्तु इस बीच में शत्रुओं के एक गोले से 'निगाहक' की भीतरी कोठरी का एक अंश उड़ गया और उसे बड़ी ही हानि पहुंची। फरकराम इससे बड़े ही कुपित होकर चारों ओर गोला बरसाने लगे। ये गोले जिधर ही जाते उधर ही अंटाधार कर देते। अब शत्रु के जहाज़ सब छिन्न भिन्न हो ही गए थे, कि पीछे से शीघ्र आते हुए एक जहाज़ के गोले का शब्द सुन पड़ा। मेरे यन्त्र द्वारा देखने पर ज्ञात हुआ कि यह वही हमारा स्वदेशी जङ्गी जहाज़ था जो कि हमारी सहायतार्थ आ रहा था। शत्रु तो निराश हो ही गए थे, परन्तु इस जहाज़ को आते देख उनका रहा सहा साहस भी जाता रहा। वे अपने प्राण लेकर भागे और शीघ्र ही एक नदी के मुहाने पर पहुंच गए, जहां पानी इतना छिछला था कि 'निगाहक' के अतिरिक्त और कोई जहाज़ उनका पीछा नहीं कर सकता था। परन्तु फरकराम की इच्छा उनके पीछा करने की नहीं थी। फरकराम उनके सात जहाज़ों को समुद्र तल पर पहुंचा चुका था और वह इससे सन्तुष्ट था।

अब हमारा स्वदेशी जहाज आगया। उसके कप्तान से विदित हुआ ये लोग डांकू थे। उसने यह भी कहा कि हम इन डाकुओं की खोज में वर्षों से थे। तुम लोगों ने उन्हें उचित दण्ड दिया। ये बातें हो ही रही थीं कि बरन बड़ा घबड़ाया हुआ नीचे से आया। उसने कहा कि 'निगाहक' में एक बड़ा छेद होगया है और उसमें बड़ी शीघ्रता से पानी भर रहा है। फरकराम इसे देखने को गया। परन्तु खेद कि वह शीघ्रता से डूब रहा था और फरकराम जैसे बुद्धिमान मनुष्य की भी उसमें कोई कला नहीं लग सकती थी। उसने बड़े शोक के साथ कहा कि अब 'निगाहक' का अन्त समय आ गया।

अब कोठरी में जल आ गया और 'निगाहक' बैठने लगा। मैंने बड़ी उत्सुकता के साथ फरकराम से पूछा कि क्या हमलोगों की अशर्फ़ियां किसी भांति नहीं बच सकतीं। उसने कहा "किसी भांति नहीं। कूदो और अपनी जान बचाओ"। अतएव हम सब अपने प्राण बचाने के लिये 'निगाहक' पर से कूद पड़े। फरकराम के मित्र जङ्गी जहाज़ के कप्तान पहिले ही से हमलोगों के लिये एक नाव भेज चुके थे। इसपर हमलोग ले लिए गए और हमलोगों ने शीघ्र ही 'निगाहक' को सदैव के लिये डूब जाते देखा।

हमारा स्वदेशी जङ्गी जहाज़ हमें पुनः होङ्ग कोङ्ग ले गया और यहां हमारा भली भांति सत्कार किया गया। यहां से हमलोग एक जहाज़ पर बैठ कर पुनः अपनी जन्मभूमि को लौट आए।

नए चमत्कारिक तथा प्रबल यन्त्र आदि और वे सब अशरफियां भी, जो हमलोगों ने समुद्र तल के नीचे डूबे हुए जहाज़ पर से पाई थीं, 'निगाहक' के साथ ही चली गईं। परन्तु मोती की गुफावाले सब मोतियों की हमलोगों ने माला बना कर पहिन

लिया था। अतएव वे सब हमारे साथ थे। अतः यह किसी अंश में सन्तोषदायक था।

यहां पर यह कह देना भी उचित जान पड़ता है कि कुछ काल में फरकराम ने 'निगाहक' के साथ डूबी हुई अशरफियों के निकालने के लिये पुनः दूसरा जल में चलनेवाला जहाज़ बनाया, जिसकी यात्रा में मैं भी सम्मिलित था। इस दूसरी यात्रा का वृत्तान्त और भी अधिक मनोरञ्जक है और इसे मैं अपने पाठकों को फिर किसी समय सुनाऊंगा।

गोपालदास

युनीवरसिटी कमीशन

[गत अङ्क के आगे]

विश्वविद्यालय के विद्यार्थी

उत्तीर्ण होनेवालों की संख्या कम होने का कारण परीक्षा की निर्धारित कठिनता का प्रत्येक वर्ष में बदलना ही है और न कि बिना सोचे समझे सब विद्यार्थियों को परीक्षा देने की आज्ञा देना है। हम लोगों का विश्वास है कि इसमें हस्तक्षेप करने से हानि होगी। हम लोग नहीं सोच सकते कि विश्वविद्यालय विद्यार्थियों के सदाचार और स्वास्थरक्षा की ओर कैसे ध्यान रख सकता है। यह बात पूर्णतया कालेजों के प्रधान के हाथों में छोड़ देनी चाहिए, विशेष कर जब कि हम लोगों के प्रस्ताव किए अनुसार उनमें से सब लोग फ़ेलो होंगे और अधिकांश सिण्डिकेट के मेम्बर होंगे।

आज कल सभाओं और साधारणों के विद्या विषयक कार्यों की ओर उचित ध्यान नहीं दिया जाता जिससे कि भिन्न भिन्न समाज एक दूसरे से अधिक संस्पर्श में रहें और इस भांति एक यथार्थ विश्वविद्यालय के जीवन की प्रवृद्धि करें। यह उत्तम होगा कि शिक्षा के भिन्न भिन्न केन्द्रों में व्यायाम के, विद्याविषयक और वैज्ञानिक समाज स्थापित किए जांय, जिसमें कि प्रोफ़ेसर तथा विद्यार्थी लोग सोत्साह अनुराग ले सकें। यदि ऐसे समाज भिन्न भिन्न कालिजों की अधीनता में स्थापित किए जांय तो इससे शिक्षक तथा विद्यार्थियों का परस्पर अधिक संसर्ग हो जायगा और विद्यार्थियों में विद्याध्ययन करने और अपने जीवन को देशहितकर कार्यों में लगाने में विशेष उत्साह होगा।

हम लोग एन्ट्रेन्स परीक्षा के लिये उम्र की सीमा बांधने के निस्सन्देह विरुद्ध हैं। उचित दिनों तक परीक्षा करके देखने के पीछे यह रीति शिक्षा के हित के लिये हानिकारक पाई गई थी और कलकत्ता विश्वविद्यालय से तथा लन्दन विश्वविद्यालय से भी, जहां की देखादेखी यह प्रचलित की गई थी, इसे उठा दिया है। अतएव हम लोगों को इसके फिर से प्रचलित करने का कोई कारण समझ में नहीं आता। हम लोग यहां पर यह भी अनुमति देंगे कि स्कूल-फ़ाइनेल परीक्षा को किसी प्रकार से उन विद्यार्थियों का बाधक नहीं होना चाहिए जो कि अपना अध्ययन आप कालेज के वर्गों में भी किया चाहते हैं। इससे बहुत से लड़के इस परीक्षा मे नहीं सम्मिलित होते। स्कूल फ़ाइनेल परीक्षा एन्ट्रेन्स परीक्षा से कठिन है। अतएव उचित है कि जो लोग इस परीक्षा में उत्तीर्ण हों, उन्हें वे सब अधिकार प्राप्त रहें जो कि एन्ट्रेन्स में उत्तीर्ण हुए विद्यार्थियों को होते हैं।

विश्वविद्यालय की शिक्षा

हम लोग कह चुके हैं कि बी० ए०, बी० एस० सी०, बी० लिट० और एल० एल० बी० परीक्षाओं के लिये विश्वविद्यालय शिक्षक का कार्य न करे। यह काम इन परीक्षाओं के पीछे, अर्थात् एम० ए०, डी० एस सी०, डी० लिट० आदि में ही प्रारम्भ हो।

यह कहा जाता है कि बहुतेरे लड़के जब कालेज की पढ़ाई प्रारम्भ करते हैं तो उन्हें अङ्गरेज़ी का उचित ज्ञान नहीं होता। यह बात

सत्य है और इसका कारण (१) स्कूल वर्गों की पाठ्य पुस्तकों का बिना उचित विचार के चुना जाना, (२) परीक्षाओं की बुरी रीति जिसमें का उद्देश्य केवल यही जान पड़ता है कि विद्यार्थियों से व्याकरण के गूढ़ विषयों का लुप्तप्राय कथाओं का हवाला पूछा जाय और यह न जाना जाय कि उन्होंने कितनी अंग्रेज़ी सीखी है और (३) इन सब पढ़ाई पर यह तब तक नहीं सुधर सकती जब तक अध्यापकों को अच्छे वेतन न दिए जायंगे और उनके भविष्यत का उचित प्रबन्ध न किया जायगा। इसका दूसरा कारण यह है कि अध्यापकों को बहुत ही अधिक लड़के पढ़ाने पड़ते हैं। किसी भाषा का अध्यापक स्कूल के नीचे के वर्गों में एक घण्टे में १५ वा २० लड़कों से अधिक नहीं पढ़ा सकता। अध्यापक को अपना कार्य भली भांति करने के लिये अच्छी विद्या तथा पढ़ाने के उपयुक्त ढंग ही की अवश्यकता नहीं है, वरन् उसे अपने कार्य में अधिक अनुराग भी होना चाहिए। ऐसा करने के लिये यह आवश्यक है कि अध्यापकों के वेतन की अभिवृद्धि की जाय और उनके लिये उचित पेन्शन का भी प्रबन्ध किया जाय।

स्कूल की पाठ्यपुस्तकों का चुनना पूर्णतया प्रान्तिक टेक्स्ट् बुक कमेटी के आधीन है और इसमें शिक्षित सर्वसाधारण की कोई सम्मति नहीं सुनी जाती। स्कूलवर्गों की पाठ्यपुस्तकों का चुना जाना बड़ी गुरुता का कार्य है, क्योंकि यह उत्तम शिक्षा का आधार है और हम लोगों की सम्मति में जितना ध्यान इस ओर दिया जाना चाहिए उसका विश्वविद्यालयों में शोचनीय अभाव है। यह कार्य पूर्णतया प्रान्तिक कमेटी ही के हाथ में न छोड़ दिया जाना चाहिए, क्योंकि उसके चुनाव अब तक संतोषदायक नहीं हुए हैं। यह बात पूर्णतया टेक्स्टबुक कमेटी के आधीन नहीं कर देनी चाहिये, क्योंकि उन लोगों द्वारा पाठ्य पुस्तकों का चुनाव हम लोगों को ठीक नहीं जान पड़ता। इस कार्य की गुरुता और उसके सम्पादन करने की कठिनाई इसीसे स्पष्ट है कि पाठ्य पुस्तकों का विश्वविद्यालय द्वारा भी चुनाव बहुधा वैसा नहीं होता जैसा कि होना चाहिये।

ग्रीक और लेटिन भाषाओं की पढ़ाई के सम्बन्ध में हम लोगों की यह सम्मति है कि भारतवर्षीय विश्वविद्यालयों के अध्ययनक्रम में इन भाषाओं के सम्मिलित करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

(१) हम लोगों की यह दृढ़ अनुमति है कि बोलचाल का अंगरेज़ी का अच्छा और शुद्ध ज्ञान प्राप्त करने के लिये यूरप की दो भाषाओं का केवल नाम मात्र ज्ञान प्राप्त करना केवल समय व्यर्थ करना है। इसके लिये विक्टोरिया के समय के ग्रन्थकारों को पढ़ना ही वास्तव में उपयोगी होगा।

(२) जर्मनी तथा अन्य युरप के देशों में प्राचीन भाषाओं के अध्ययन की प्रथा उठी जाती है और आधुनिक विद्वान लोग बिना इनके सीखे ही सन्तोषदायक कार्य कर रहे हैं।

परन्तु पूरब की प्राचीन भाषाएं विश्वविद्यालय के अध्ययनक्रम में स्थान पाने योग्य हैं। संस्कृत की पढ़ाई निन्दनीय और दोषयुक्त होती है। उस में नवसिखुओं के लिये अच्छी पुस्तकें नहीं हैं। इसके अतिरिक्त हम लोगों की अनुमति है कि संस्कृत भाषा देवनागरी अक्षरों में लिखी जानी चाहिये और कलकत्ता विश्वविद्यालय की नाईं इस में कोई प्रान्तिक हेर फेर न होने देना चाहिये।

संस्कृत की पढ़ाई के सम्बन्ध में हम लोग संस्कृत कालेजों में इस भाषा के पढ़ाए जाने की रीति पर बिना शोक प्रकाश किए हुए नहीं रह सकते। विद्यार्थी के वर्णमाला सीखते ही, बिना उसके मातृभाषा का कुछ भी ज्ञान हुए, पढ़ाई का विभाग प्रारम्भ हो जाता है। रटन्त विद्या को अत्यन्त ही उत्साह दिया जाता है। व्याकरण तथा न्याय के सूत्र पर सूत्र बिना यथार्थ तात्पर्य समझे ही रटाये जाते हैं, विद्यार्थियों को जो कुछ आता है उसके समझने योग्य वर्णन करनेकी शक्ति उनमें तनिक भी नहीं होती। इस शिक्षा का आवश्यक फल

यह होता है कि उन विद्यार्थियों को जो कि प्रति वर्ष उत्तीर्ण होते हैं और जो एक अथवा दो विषयों में विशेष विद्वान् कहलाते हैं, संस्कृत का वाक्य शुद्धता पूर्वक लिखने की योग्यता नहीं होती और न उनको हिन्दी ही का कुछ बोध होता है। यह अवस्था शोचनीय है। हम लोग यह सम्मति देंगे कि ये संस्कृत के कालेज विश्वविद्यालय के आधीन किए जायं और शिक्षा का विभाग केवल तभी होने दिया जाय जब कि विद्यार्थी लोगों को केवल हिन्दी ही का नहीं, वरन् संस्कृत का भी अच्छा बोध हो जाय।

विश्वविद्यालय भारतवर्षीय देशभाषाओं की पढ़ाई पर कुछ भी ध्यान नहीं देते और ऐसे बहुत से बी० ए० नहीं मिलेंगे जो किसी वैज्ञानिक या न्याय के विषय पर अपना विचार ठीक ठीक लालित्य तथा सुन्दरता के साथ प्रकट कर सकें। इस बुराई को दूर करने के लिये हम लोग यह प्रस्ताव करते हैं कि इण्टरमीडिएट की परीक्षा में अङ्गरेज़ी के चार परचे–(१) पद्य, (२) गद्य, (३) देशभाषा से अङ्गरेज़ी में अनुवाद और (४) देशभाषा में लेख–इस परीक्षा के लिये देशभाषा की कोई पाठ्यपुस्तक नियत करने की आवश्यकता नहीं है।

इसी प्रकार से, बी० ए० की परीक्षा में भी अङ्गरेज़ी के चार परचे होने चाहिए–(१) पद्य, (२) गद्य, (३) अङ्गरेज़ी में लेख और (४) देशभाषा में लेख अथवा उसके इतिहास के किसी अंश का अध्ययन।

स्कूल के वर्गों में देषभाषाओं की पाठ्य पुस्तकें नियत की जानी चाहियें न कि विषय चुने जाने चाहियें, क्योंकि इन वर्गों के विद्यार्थियों को इस भाषा में पूरी पूरी योग्यता प्राप्त करने की आवश्यकता है।

इस सम्बन्ध में हमलोग यह सम्मति भी देंगे कि प्रत्येक विश्वविद्यालय को उन सब देशभाषाओं को स्वीकार करना चाहिए जिनमें छपे हुए ग्रन्थ हैं। इलाहाबाद का विश्वविद्यालय इस बात में बहुत ही पीछे है।

गणित के विषय में, हम लोगों को प्रति वर्ष उसके कठिन किए जाने की, और जो लोग साहित्य का अध्ययन कम लेते हैं उनके लिये भी आवश्यक किए जाने की कोई आवश्यकता नहीं देख पड़ती; क्योंकि अधिकांश विद्यार्थियों को बाइनोमिएल थिओरम, संवगमान, अनुवृत्त, और ज्या का ज्ञान उनके जीवन में किसी कार्य का नहीं होता। यह विद्यार्थियों की धारणा पर एक व्यर्थ का बोझ है और इससे कोई व्यवहारिक लाभ नहीं होता। अतएव हमलोगों की प्रार्थना है कि यह एफ० ए० के लिये रुच्यधीन विषय हो। इसके स्थान पर इकोनोमिक्स, लोजिक और एथिक्स का, जो कि मनुष्यों को उनके जीवन के युद्ध के लिये तैयार करते हैं, पढ़ाना अधिक लाभदायक होगा।

धर्मशिक्षा

आज कल जैसी अवस्था है उसमें हमलोग धर्मशिक्षा का देना सम्भव नहीं देखते। इसमें बहुत ही अधिक कठिनाइयां पड़ेंगी और इसका कोई अच्छा फल नहीं निकलेगा। धर्म्मशिक्षा केवल भिन्न भिन्न समाजों के हाथ में छोड़ दी जाय, गवर्न्मेण्ट को इस विषय में हस्तक्षेप न करने में सावधान होना चाहिये।

परीक्षा

भारतवर्ष की शिक्षा की प्रथा में सबसे बड़ी बुराई यह है कि उसमें परीक्षाएं बहुत ही अधिक होती हैं। सब डिपार्टमेण्टल परीक्षाओं को उठा कर उनके स्थान पर केवल स्कूल की परीक्षाएं कर दी जायं तो बहुत अच्छा हो। इससे अवश्य ही हेड मास्टरों के ऊपर अधिक भार हो जायगा और जिसका होना उचित है। हमलोगों की सम्मति है कि एन्ट्रेन्स और बी० ए० की परीक्षाओं के बीच एक से अधिक परीक्षा न हो। बम्बई विश्वविद्यालय में इनके बीच में दो परीक्षाएं होती हैं। अतएव

इनमें से एक परीक्षा लाभ के साथ उठा दी जा सकती है। ऐसा करने से वह विश्वविद्यालय भी अन्य विश्वविद्यालयों के बराबर हो जायगा। इसी प्रकार की भिन्नता कानून की परीक्षाओं में भी है। किसी विश्वविद्यालय में एल० एल० बी० की परीक्षा प्रथम है; किसी में एल० एल० बी० के उपरान्त भी अधिक पढ़ाई है और किसीमें अन्तिम परीक्षा एल० एल० बी० ही की है। ये सब भेद उड़ा कर इसके स्थान पर केवल दो परीक्षाएं की जा सकती हैं, अर्थात् एल० एल० बी० और एल० एल० डी०।

सारांश यह कि हमलोग भरतवर्ष भर के विश्वविद्यालयों की परीक्षाओं में समानता के होने और एक ही परीक्षाओं के लिये एक पदवियों के दिये जाने का पक्ष समर्थन करते हैं।

परीक्षकगण

विश्वविद्यालय प्रान्त भर में उच्चतम शिक्षा-सम्बन्धी समाज है। अतएव उसके कार्य सन्देह से बाहर होने चाहिएं। परीक्षकों के नाम न प्रकाशित होने के सम्बन्ध में हम लोग यह दृढ़ अनुमति देंगे कि उनके नाम प्रकाशित करने की प्राचीन रीति फिरसे प्रचलित की जाय। उनके नाम अप्रकाशित रखने से कोई लाभ नहीं होता और इसके अतिरिक्त वे वास्तव में कभी गोप्य नहीं रहते, वरन् बहुधा विद्यार्थियों को विदित हो जाते हैं।

दूसरी बात यह है कि संयुक्त प्रदेश में कुछ विषयों का तो मानो कई विशेष प्रोफ़ेसरों को एकाधिकार हो गया है। उदाहरणस्वरूप हम लोग अङ्गरेज़ी के अनुवाद (देशभाषा से अङ्गरेज़ी में) के परचे का उल्लेख करेंगे और मज़ा यह है कि भाषा के वाक्य, जो अनुवाद के लिये दिए जाते हैं, वे सदैव व्याकरण तथा मोहावरे में अशुद्ध और भद्दे होते हैं। हम लोगों को इसका कोई कारण नहीं देख पड़ता कि केवल वे ही लोग इसके परीक्षक होने के योग्य समझे जायं जिनकी मातृभाषा देशभाषा नहीं है। हमलोगों की सम्मति में जितनी देशभाषाएं हैं उतने ही भिन्न भिन्न पुरुष प्रश्न चुनने के लिये नियत किए जायं। यह बात केवल अनुवाद ही के नहीं, वरन् बहुत से दूसरे विषयों में भी है। हमलोग कमिशन को शिक्षाविभाग से दस वर्षों में मिडिल की परीक्षा के परीक्षकों के नाम तथा उनकी आधुनिक स्थिति के पूछने को प्रार्थना करते हैं। इसकी जांच करने से यह बात प्रगट होगी कि बहुत सी अवस्थाओं में बहुत सामान्य योग्यता के पुरुष परीक्षक नियत किए गए हैं। इससे कमिशन यह भली भांति जान सकेगा कि शिक्षाविभाग में कैसा प्रबन्ध किया जाता है। हम लोगों की यह सम्मति है कि परीक्षकगण अधिकता से दूसरे प्रान्तों से लिये जायं जिसमें ये सब दोष तथा बहुत सी ईर्षाद्वेष दूर हो जायं।

हम लोगों की यह भी सम्मति है कि कालेज या स्कूल के प्रधान (मुखिया) की प्रार्थना पर उत्तरों की कापियां फिर से देखी जाया करें। इसके लिये कुछ फ़ीस नियत कर दी जाय।

विद्यार्थियों के, और विशेषतः अनुत्तीर्ण विद्यार्थियों के अंक सदैव उनके कालेज वा स्कूल के मुखिया के पास भेजे जायं जिसमें अध्यापक लोग अपने अपने विद्यार्थियों के दोष जान सकें तथा उन्हें दूर करने का यत्न करें।

डिग्री की परीक्षाओं के लिये केवल एकही केन्द्र न होना चाहिये। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में हम लोग चाहते हैं कि डिग्री की परीक्षाओं के लिये इलाहाबाद, लखनऊ और आगरा, केन्द्र स्थापित किए जायं। दूसरे विश्वविद्यालयों में भी इसी प्रकार किया जायं।

हम लोग यह भी सम्मति देंगे कि सब विषयों में कुछ वैकल्पिक प्रश्न भी रहने चाहियें कि जिससे कि विद्यार्थियों की योग्यता का पूरा परिचय मिल सके। इससे रटन्त बहुत रुक जायगी। दूसरे, भिन्न भिन्न परीक्षाओं के भ्रम को रोकने के लिये

प्रश्न के परचे पर प्रत्येक प्रश्न के सामने उसके अंक के भी छपने की पुरानी रीति फिर से प्रचलित की जाय।

परीक्षकों के नियत किए जाने के विषय में हम लोगों की सम्मति है कि यह कार्य्य बोर्ड आफ़ ट्रस्टीज़ द्वारा कराया जाय और कालेजों के प्रिन्सिपेलों से यह प्रार्थना की जाय कि वे परीक्षक नियत करने योग्य अध्यापकों और प्रोफ़ेसरों के नाम लिखें। परीक्षक होना केवल एक वा दो कालेजों का एकाधिकार न बनाया जाय। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में रेजिस्ट्रार एक तिथि नियत करता है जिसके भीतर उसके पास परीक्षक होने के आवेदनपत्र पहुंच जाने चाहिए। परन्तु यह तिथि कभी केलेण्डर में नहीं छापी जाती और इसका आवश्यक फल यह होता है कि बहुत से आवेदनपत्र उसके पास इस तिथि के उपरान्त पहुंचते हैं। इसका संशोधन तुरन्त होना चाहिए।

यहां पर हम लोग यह भी प्रार्थना करेंगे कि परीक्षाओं की तिथियों पर विद्यार्थियों के हित में फिर से पूर्णतया विचार किया जाय। भिन्न भिन्न विश्वविद्यालय बहुत दिनों से इन तिथियों की परीक्षा कर रहे हैं, अतएव अब यह समय आगया है कि उन्हें इस विषय में एक संतोषदायक विचार सदैव के लिये स्थिर कर लेना चाहिए। जाड़े के छ महीनों को परीक्षा लेकर वा छुट्टी देकर न बिताना चाहिए।

रजिस्ट्रार और उसका दफ़तर

हम लोगों की सम्मति में, प्रत्येक विश्वविद्यालय में ऐसा रजिस्ट्रार होना चाहिए जो अपना पूरा समय उसी काम में व्यतीत करे, जिसमें वह अपने आफ़िस का कार्य्य शीघ्र तथा भली भांति सम्पन्न कर सके। रजिस्ट्रार का वेतन बहुत ही अधिक है। रजिस्ट्रार के पद के लिये, जिसका अधिक कार्य्य क्लार्क का है, किसी यूरोपीय विश्वविद्यालय के ग्रेजुएट की आवश्यकता नहीं है। बहुतेरे ऐसे हिन्दुस्तानी लोग सुगमता से मिल सकते हैं जो कि इस पद के लिये पूर्णतया योग्य हों। हम लोग समझते हैं कि इसके लिये ३००) रुपया से ४००) रु० तक का वेतन बहुत है। हम लोगों की सम्मति में कुछ विश्वविद्यालयों ने रजिस्ट्रार नियुक्त करने में सदैव बुद्धिमानी नहीं की है। यहां यह बात कहनी छूट जाती है कि रजिस्ट्रार के कार्य्य सम्पादन करने के लिये फुर्तीले मनुष्य की आवश्यकता है और इस पद पर ऐसे लोगों का नियत किया जाना ठीक नहीं है जो अपना पूरा काल सरकारी नौकरी में व्यतीत कर चुके हों। ५५ वर्ष की अवस्था में पेन्शन लेने का नियम लाभ के साथ प्रचलित कर दिया जा सकता है।

सम्मिलित कालेज

सब सरकारी तथा सम्मिलित कालेजों के अध्यापन पर केवल प्रिन्सिपेल ही नहीं वरन् शिक्षाविभाग के डाइरेकटर तथा उच्चवेतन के इन्स्पेकटर लोग भी ध्यान रखते हैं। इसके अतिरिक्त ऊपर किए हुए प्रस्ताव के अनुसार, ये सब फेलो होंगे और इनमें से बहुत से सिण्डिकेट के मेम्बर भी होंगे। अतएव विश्वविद्यालय को अध्ययन तथा शिक्षा पर अमोघ अधिकार हो जायगा। और साधारण परीक्षाओं के परिणामों से शिक्षा की यथार्थ और पूर्ण उपयोगिता भी प्रगट हो जायगी। हम लोगों की सम्मति में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में कालेजों के सम्मिलित करने के सम्बन्ध के नियम निष्प्रयोजन ही विशेष कठोर हैं। अतएव यह अत्यन्त वाञ्छनीय है कि ये नियम कुछ बदल दिए जायं।

इन्सपेक्टर

यद्यपि इस प्रश्न को कमिशन ने नहीं उठाया है, परन्तु हम लोग इसपर अपनी सम्मति देना आवश्यक समझते हैं। क्योंकि हम लोगों का विचार है कि इसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध केवल कालेज ही की शिक्षा से नहीं, वरन् स्कूल की शिक्षा से भी है।

किसी प्रोफ़ेसर को कदापि इन्स्पेक्टर नहीं नियत करना चाहिए, क्योंकि (१) वह किसी एक विषय का विशेष विद्वान होता है और न कि अनेक विषयों का जानने वाला; (२) उसको कार्य निर्वाहकता का कोई अनुभव नहीं होता; (३) उसको भाषा का ज्ञान कुछ भी नहीं रहता। यह आशा रखना कि किसी विषय का विशेष विद्वान अपना समय किसी भारतवर्षीय भाषा के अल्प ज्ञान प्राप्त करने में व्यतीत करेगा, उचित नहीं है। परन्तु हेडमास्टर में ये सब गुण पाए जायंगे। (१) भिन्न भिन्न विषयों के बीसों अध्यापकों के कार्य को प्रतिदिन देख भाल करने से वह अवश्य प्राज्ञ हो जाता है। (२) उसे कार्यनिर्वाहकता का बहुत अनुभव रहता है। (३) उसे देश भाषा का ज्ञान किसी प्रोफ़ेसर की अपेक्षा अवश्य ही अधिक होता है।

फ़ीस

हम लोग कमिशन से सविनय प्रार्थना करते हैं कि वह भिन्न गवर्न्मेंटों से फ़ीस अधिक करने की आज्ञा पर फिर से विचार करवावे। हिन्दुस्तानी सर्वसाधारण के हित में यह बात अत्यन्त ही हानिकारक है। दुर्भाग्यवश भारतवर्ष में बहुत से ऐसे दरिद्र लोग हैं जिन्हें उच्चशिक्षा पाने की अभिलाषा तथा योग्यता भी है। परन्तु वे अपने यत्नों में उस उंची फ़ीस से रोके जाते हैं जिसे कि वे नहीं दे सकते। हिन्दुओं तथा मुसलमानों के राज्य से सदैव केवल धर्मार्थ शिक्षा ही देने की नहीं, वरन् धर्मार्थ भोजन और स्थान देने की भी प्रथा थी। अतएव विद्यार्थियों को अपने अध्ययन के लिये द्रव्य देने का यह विचार इस देश की प्राचीन चाल के पूर्णतया विरुद्ध है। इससे यह जान पड़ेगा कि सस्ती शिक्षा न देने की जो चिल्लाहट मच रही है वह स्वार्थी लोगों का काम है। उन कालेजों के विषय में जहां अब भी फ़ीस नहीं ली जाती, वा केवल नाम मात्र को ली जाती है, यह विचार करना भूल है कि विद्यार्थियों को शिक्षा के लिये कुछ नहीं देना पड़ता; अतएव वहां की शिक्षा सस्ती है। क्या वस्तुओं का अर्द्ध मूल्य सदैव उसके यथार्थ मूल्य ही के बराबर होता है? जब गवर्न्मेंट फ़ीस थोड़ी लेती थी, उस समय क्या शिक्षा किसी प्रकार से "सस्ती" थी? ये ही प्रोफ़ेसर लोग इसी वेतन पर उस समय भी इतना ही और ऐसी ही भली भांति पढ़ाते थे जब कि विद्यार्थियों को कम देना पड़ता था। यह नहीं कहा जा सकता कि जो शिक्षा अब दी जाती है वह फ़ीस बढ़ जाने के कारण अधिक उत्तम हो गई। हां! इसने बुद्धि और विद्योत्साह के आगे धन का अधिक मान किया है। यह दुःख की बात है कि ऐसे विचार प्रचलित किए जायं। यह बात स्पष्ट है कि यह शिक्षा, उन मित्रों तथा सहानुभूति रखनेवालों के लिये जो कि अपने चन्दों से ऐसी शालाओं को चलाते हैं, तथा उन अध्यापकवर्गों के लिये, जो अपनी इच्छा से काम करके केवल अपने जीवननिर्वाह के योग्य वेतन लेते हैं, सस्ती नहीं है।

सभा इस बात पर ज़ोर दे देकर प्रार्थना करती है कि विद्यालयों की प्रबन्धकारिणी सभाओं को उनके प्रबन्ध में स्वतन्त्रता दी जाय, विशेषतः उन विद्यालयों में जो गवर्न्मेंट से कोई सहायता नहीं पाते। ऐसी सभाएं परीक्षाओं, अध्ययनक्रम तथा पाठ्य पुस्तकें आदि चुनने में सर्कारी नियमों से कुछ भी बाध्य न रक्खी जायं। इससे कुछ उद्योगी शिक्षोन्नति करनेवालों को अपने विचारों को कार्य में लाने का और उसकी उपयोगिता अथवा अनुपयुक्तता का निर्णय करने का अवसर मिलेगा। अन्त में सभा गवर्न्मेंट से यह प्रार्थना करती है कि वह हिन्दुस्तानियों के अपने देश के युवकों के शिक्षा देने के बढ़ते हुए उत्साह को ऐसे दारुण और कठोर प्रबन्ध प्रचलित करके नहीं रोकेगी जिसमें इस बड़े देश की बहुत सी भिन्न भिन्न आवश्यकताओं पर विचार नहीं किया गया। भारतवर्ष की प्राचीनरीति धन और विद्या को संयुक्त नहीं करते वरन् असम्बद्ध करते हैं। भारतवर्ष में विद्वान लोग

प्रायः दरिद्र होते आए हैं। जो लड़के बहुत अधिक सम्भव है कि विद्या के दृढ़वर्द्धक, राजभक्त, शान्त प्रजा वा गवर्न्मेण्ट के उपयुक्त नौकर हों, वे प्रायः ऐसे प्राचीन परन्तु दरिद्र वंश से उत्पन्न हुए होंगे जिसमें उच्च ज्ञान परम्परागत जान पड़ता है; परन्तु दरिद्रता उसका साधारण लक्षण है। ये वंश युरोपीय शिक्षा से दिन दिन अधिक वञ्चित रक्खे, जाते हैं।

अतएव सभा की यह प्रार्थना है कि यद्यपि गवर्न्मेण्ट सब कालेजों के शिक्षकवर्गों की योग्यता पर ज़ोर दे, परन्तु वह उनके कालेजों को जो गवर्न्मेण्ट से सहायता नहीं लेते, अपने कार्य के प्रबन्ध में स्वतन्त्रता दे और कम फीस के अभाव को दानी लोगों की उदारता से पूरा करने दे। सभा का विश्वास है कि बड़े नियमों से शिक्षा में हानि पहुंचेगी। अतएव वह प्रार्थना करती है कि गवर्न्मेण्ट समस्त शिक्षा तथा विद्यासम्बन्धी उद्योगों पर कृपादृष्टि बनाए रहे और न कि उनका विरोध करे। इससे भारतवासी उस नीति के लिये कृतज्ञ होकर जो उनकी आवश्यकताओं और प्राचीन प्रथाओं को मान कर करने में उद्यत करे, उस साम्राज्य में और भी घनिष्ठता से मिल जायंगे जिसके अन्तर्गत शक्तिमान ईश्वर ने उन्हें कर दिया है

प्रकृति

(१)

छटा औरही भांति की देखते हैं
जहां दृष्टि हैं डालते फेर कर मुंह।
कहीं छन्द सुनते कहीं देखते हैं
कहीं कोकिलों की मनोहर "कुहू कुहू" ॥

(२)

कहीं आम बौरे, कहीं डालियों के
तले फूल आकर गिरे बीच थाले।
रखे हैं मनो टोकरे मालियों के
इकट्ठे जहां भौंर से भीर वाले ॥

(३)

कहीं व्योम में साँझ की लालिमा है
कभी आकाश को स्वच्छ पाते हैं हम।
कभी रात्रि में मेघ को कालिमा है
कभी चन्द्रिका देख पछताते हैं हम ॥

(४)

कभी इन्द्र का चाप है सतरंगी
जहाँ ज्योति के संग बूंदी घनी है।
कुसुम्भी, हरा, लाल, नीला, नरंगी
कहीं पीत शोभा कहीं बैंगनी है ॥

(५)

कहीं ह्वेल से जीव हैं दृष्टि आते
कहीं सूक्ष्म कीटादि की पँक्तियाँ हैं।
उन्हें देख कर चित्त हैं चित्त खाते
इन्हें देखने की नहीं शक्तियाँ हैं ॥

(६)

कहीं पर्वतों से नदी बह रही है
कहीं वाटिका में बनीं स्वच्छ नहरें।
कहीं प्राकृतिक कीर्ति को कह रही हैं
छटाधीश वारीश की बंक लहरें ॥

(७)

कहीं पेड़ की पत्तियाँ हिल रही हैं
कहीं भूमि पर घास ही छा रही है।
सुगंधें कहीं वायु में मिल रही हैं
कहीं सारिका प्रेम से गा रही है ॥

(८)

कहीं परवतों की छटा है निराली
जहाँ वृक्ष के वृंद छाए घने हैं।
लगीं एक से एक प्रत्येक डाली;
मनो पान्थ के हेतु तम्बू तने हैं ॥

(९)

कहीं दौड़ते झाड़ियों बीच हर्नें
लिये मोद से शावकों को भगै हैं।
कहीं भूधरों से झरैं रम्य झर्नें
अहा! दृश्य कैसे अनूठे लगैं हैं ॥

(१०)
कहाँ खेत के खेत लहरा रहे हैं
प्रसन्नात्मा हैं कृषीकार सारे।
उन्हें देख कर मूँछ फहरा रहे हैं
सदा घूमते काँध पर लट्ठ धारे॥
(११)
अनोखी कला सच्चिदानन्द की है
उसीकी सभी वस्तु में एक सत्ता।
अहो! कौमुदी यह उसी चंद की है
किया जिसने संयुक्त है पेड़ पत्ता॥
(१२)
उसी की प्रभा से प्रकाशित हुए हैं
लतायुक्त संसार के वृक्ष सारे।
उठे शृंग आकाश माना छुए हैं
जहाँ हैं चमकते अनेकों सितारे॥
(१३)
जहाँ ध्यान देते हैं चारो दिशा में
पड़ें दीख संसार नियमानुसारे।
सदा चंद आनन्ददाता निशा में
सदा सूर्य अपना उँजेला पसारे॥
(१४)
समै पर सदा फूल भी फूलते हैँ
उसी भाँति वृक्षों में फल भी लगे हैँ।
नहीं कौन सौंदर्य पर भूलते हैं
नहीं कौन के चित्त उन पर डगे हैं॥
(१५)
समै से सदा मेघ भी वर्सते हैँ
शिखंडी सभी नृत्य को खोलते हैं।
घटा देख कर बूँद को तर्सते हैं
पपीहा तभी कंठ से बोलते हैँ॥
(१६)
अचम्भा सभी वस्तु संसार की है
वृथा दर्प विज्ञान भी ठानता है।
व वागीश ने सृष्टि विस्तार की है
वही एक सब मर्म को जानता है॥

वागीश्वर मिश्र

दुष्ट तजै नहिं दुष्टपने को

भानु तजै अपनी गति को बरु
पावकतेज प्रचंड घने को
पंकज हू तजि पंक निवास
बिकास करै गिरि शृंगन नेको।
गोविंदचंद्र चलै अचला महि
जाइ तलै कवि वृंद भनैं को।
पै निशि सोवत हू सपने मन
दुष्ट तजै नहि दुष्टपने को॥ १॥

शूकर नाहि तजै मल को भखु
वायस आमिख भोजन नेको।
कूकर अस्थि, न चर्म सियार,
न पन्नग हू विषदंत सने को।
श्रोणित पान तजै नहिं जोंक,
कहै कवि गोविंदचंद्र गिनै को।
तैसेहि क्रूर कुचाली महा खल
दुष्ट तजैं नहिं दुष्ट पने को॥ २॥

विष अमृत कायर शूर बनें
वायस शुभदायक युक्ति बने को।
निज चालिहु छाँड़ि भुजंग चलै,
प्रिय अंग तजै सु मुखा अपने को।
पावक प्रकृति विसारि रहै,
धन आइ मिलै कबहूं सपने को।
सतसंग प्रभाव बड़ो अद्भुत
किमि दुष्ट तजै नहिं दुष्टपने को॥३॥

रावण सीय लई हरि कें पुनि
मान कियो शुभ चित अपनेको।
बालि भुआल अनीति करी
परि प्रीति करी पाइ दर्शन नीको।
गौतम नारी बिचारी तरी
करि पाप परी लै श्राप मुनी को;
शरणागति पाइ तिरे सिगरे,
किमि दुष्ट तजै नहिं दुष्टपने को॥४॥

केतक कोऊ करै उपदेश न
  लेश हिये मन आवत नेको
जैसे हलाहल के घट में
  गत बुंद सुधारस काहि गिने को ॥
गोविन्द चंद्र किये विनती नहि
  मानत नेक बिचार हनै को।
धारें फिरें गति पन्नग सी जग
  दुष्ट तजैं नहिं दुष्ट पने को ॥ ५ ॥

ज्ञान तजै नहिं ज्ञानी महातम
  ध्यान तजै नहिं ध्यानी खने को
लंपट वाम न दामहिं सूम
  न रामहिं गोविंदचन्द्र क्षणे को।
शूर तजै नहिं शूरता धर्म
  न कायर प्राण प्रमाण घने को।
सज्जन सज्जनता न तजै अरु
  दुष्ट तजै नहिं दुष्टपने को ॥ ६ ॥

काली वनमाली से जंग करी
  प्रभु अंग परिस पायो पद नीको
ठग चोर रहे चहुं ओर कहे
  कवि बाल लह्यो पद सुर रमनें को
प्रभु दीनदयाल सदा ही कृपालु
  ऊंकार आधार यही एक मन को
तजि अवगुण दास किये प्रभु ने किमि
  दुष्ट तजै नहिं दुष्ट पने को ॥ ७ ॥

ज्ञान को सार सम्हार कहै शुभ
  नीत पुनीति कहै सब नों को
भवकूप परे मति हीन निरे बहु
  पाप करे अरु दुख सजनों को।
चारो यतन करि सुद्ध करै तो
  प्रहार करै मल दुष्ट जने को
दंड प्रचंड बिना कबहूं पर
  दुष्ट तजै नहिं दुष्टपने को ॥ ८ ॥

ॐकार सिंह।

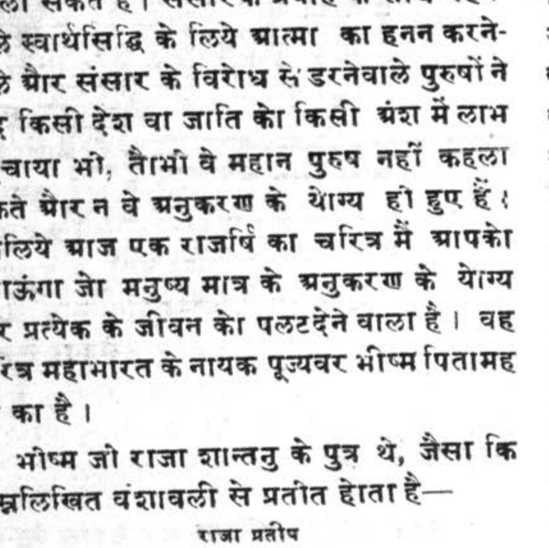
राजर्षि भीष्म पितामह जी

Lives of Great men all remind us, We can make our lives sublime.

प्रिय पाठकगण! सरस्वती की प्रत्येक संख्या में आप किसी न किसी योग्य पुरुष के जीवनचरित्र को अवश्य पाते हैं और जबसे इस पत्रिका ने जन्म लिया है, तबसे लेकर इस संख्या तक बहुत से जीवनचरित्र आप लोगों के दृष्टिगोचर हुए हैं और आपने अवश्य उनसे लाभ उठाया होगा। परन्तु जिस महापुरुष की जीवनी को लेकर आज मैं आपके सम्मुख उपस्थित हुआ हूं, वह एक अद्भुत जीवनी है। योंतो प्रत्येक देश में समयानुसार योग्य पुरुष उत्पन्न होते रहे हैं और उन पुरुषों के चरित्र को पढ़ उस देश की संतान ने अपने आदर्श सम्मुख रख उन्नति के शिखर पर चढ़ने का यत्न किया है; परन्तु आज जिस प्रभावशाली पुरुष का वृत्तांत मैं आपको सुनाऊंगा, उसकी गणना उन पुरुषों में है जो प्रत्येक मनुष्य के, चाहे वह किसी देश में उत्पन्न हुआ हो और किसी जाति से सम्बन्ध रखता हो, मान्य हैं। ऐसे पुरुष कौन हो सकते हैं? जिनके जीवन से संसारमात्र का उपकार हो, जिनके हृदय शुद्ध और पक्षपात से रहित हों, जिनको विशेष जाति से प्रेम और विशेष से द्वेष न हो, जो सदा धर्म को अपना मित्र मानें। पाठकगण! आपको आश्चर्य्य होगा कि ऐसा पुरुष कौन हो सकता है? जाति का और देश का लगाव अवश्य पुरुषों की जीवनियों में पाया जाता है, परन्तु ऐसा विचार मत रखिए। इस आर्य्यावर्त की पवित्रभूमि में ऐसे ऐसे रत्न उत्पन्न हुए हैं जिन्होंने न केवल इसी देश के गौरव को बढ़ाया है, वरन् मनुष्यजाति के लिये उन्नति का द्वार खोल

गौरव के कारण हुए हैं। सच्चे Great men और आदर्श के योग्य पुरुष यदि इतिहास में मिल सकते हैं तो आर्य्यावर्त के ही बचे हुए इतिहास में मिलेंगे। कारण यह कि निष्काम कर्म करनेवाले और पक्षपात रहित धर्मात्माजन ही आदर्श के योग्य हो सकते हैं, जिन्होंने प्रकृति के नियम के अनुसार अपने धर्म (Duty) को ही मुख्य मान सदा आत्मा के अनुकूल कर्म किया है। वे पुरुष ही Great men कहला सकते हैं। संसार के प्रवाह के साथ बहनेवाले स्वार्थसिद्धि के लिये आत्मा का हनन करनेवाले और संसार के विरोध से डरनेवाले पुरुषों ने यदि किसी देश वा जाति को किसी अंश में लाभ पहुंचाया भी, तौभी वे महान पुरुष नहीं कहला सकते और न वे अनुकरण के योग्य ही हुए हैं। इसलिये आज एक राजर्षि का चरित्र मैं आपको बताऊंगा जो मनुष्य मात्र के अनुकरण के योग्य और प्रत्येक के जीवन को पलटदेने वाला है। वह चरित्र महाभारत के नायक पूज्यवर भीष्म पितामह जी का है।

भीष्म जी राजा शान्तनु के पुत्र थे, जैसा कि निम्नलिखित वंशावली से प्रतीत होता है—



भीष्म जी का जन्मनाम देव था, परन्तु वह राजा शान्तनु की पहिली स्त्री गंगा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे, इसलिये महाभारत के लेखक ने उनको गांगेय नाम से भी पुकारा है। माता पिता ने इनको पराविद्या (ब्रह्मविद्या) अध्ययन करने के लिये ब्रह्मर्षि वशिष्ठ जी के पास भेज दिया, जहां इन्होंने थोड़े ही काल में वेदों को अंगों सहित पढ़ लिया और फिर क्षात्र धर्म के ज्ञाता वृहस्पति जी से शस्त्रविद्या और राजनीति पढ़ी। इस प्रकार वे परा और अपरा दोनों विद्याओं में निपुण हो गए। महाराजा शान्तनु की पहिली स्त्री गंगा मर चुकी थी। एक दिन महाराज जंगल में आखेट के लिये गए। वहां उन्होंने एक युवती को देखा। राजा उसके रूप को देख उसपर मोहित हो गए और उनको इच्छा हुई कि उसके साथ विवाह कर लें। निदान उन्होंने अपने आदमियों को उसका वृत्तान्त जानने के लिये भेजा। जान पड़ा कि वह दास (मछुए) की लड़की है और नाम उसका सत्यवती है। राजा ने उसके पिता के पास जा कर अपनी इच्छा प्रकट की। दास ने कहा कि मैं अपनी कन्या राजा को देसकता हूं, यदि राजा यह प्रण करें कि राज्य का अधिकार इस लड़की के संतान को होगा। राजा ने यह अस्वीकार किया, क्योंकि उसका योग्य पुत्र देव राज्य का अधिकारी था। राजा शान्तनु वहां से लौट आया, परन्तु सदा विरह की अग्नि से जलने लगा। शरीर निर्बल हो गया। जब देव को इसका कारण ज्ञात हुआ तो उसकी आत्मा यह सहन न कर सकी कि उसके कारण उसके पिता को दुख हो। उसने मन में विचार किया कि यद्यपि मुझे बड़ी भारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा, परन्तु क्या मैं अपने पिता को दुखी देख सकता हूं! मुझे राज्य न मिले, धन न मिले, परन्तु मेरा पिता आनन्द से रहे क्योंकि योग्य पुत्र का धर्म पिता की श्रद्धा से सेवा करना है। माता पिता के ऋण से पुत्र उऋण नहीं हो सकता। अस्तु, वह आप, सत्यवती के पिता के पास गया और उससे प्रार्थना की कि वह अपनी कन्या का विवाह राजा से करदे; परन्तु उसने फिर उत्तर दिया कि मैं अपनी कन्या राजा को तभी अर्पण कर सकता हूं जब राजा इसकी संतान को राज्य देना स्वीकार करे। अब देव के लिये अपने पिता को सुखी करने का इसे छोड़

और कोई उपाय न था कि आप अपने अधिकार को छोड़ दें। उस समय देव बोला—

एवमेतत्करिष्यामि यथा त्वमनुभाष्यसे
योऽस्यां जनिष्यते पुत्रः स नो राजा भविष्यति।
आदि— ४०५१

अर्थात्, जैसा तू कहता है वैसाही करूंगा, इस कन्या की सन्तान ही को राज्य का अधिकार होगा। देव ने यह पण किया कि वह अपने पिता के सिंहासन पर नहीं बैठेगा और सत्यवती के गर्भ से जो पुत्र होगा वही सिंहासनारूढ़ होगा। परन्तु दास ने इसपर भी संतोष नहीं किया; क्योंकि ईश्वर को अभिप्रेत था कि देव कठिन व्रत धारण करके 'भीष्म' नाम से संसार में प्रसिद्ध हो और एक उदाहरण बन के दिखलावे कि किस प्रकार कोई पुरुष बालब्रह्मचारी रह सकता है, और इस पवित्र व्रत ब्रह्मचर्य्य के क्या क्या गुण हैं। दास ने कहा मैं केवल यही नहीं चाहता कि तुम ही सिंहासन पर न बैठो। सम्भव है कि तुम्हारी सन्तान तुम्हारे पीछे इसके पुत्रों को मार राज्य का अधिकार छीन ले। इसलिये मैं यह चाहता हूं कि तुम्हारी सन्तान भी सिंहासन पर न बैठे और न कोई झगड़ा हो। देव अपने विषय में तो कह सकता था, संतान के झगड़े को मूल से कैसे काट सकता था। विचार में पड़ गया कि क्या किया जावे। झट ध्यान आया कि विवाह ही नहीं करेंगे, न सन्तान पैदा हो, न झगड़ा मचे। दास से बोले—

अद्य प्रभृति मे दास ब्रह्मचर्य्यं भविष्यति
अपुत्रस्यापि मे लोका भविष्यन्त्यक्षया दिवि।
महा० आदि०—४०६०

हे दास, आज से व्रतधारण करता हूं कि मैं सारी उमर ब्रह्मचारी रहूंगा और पुत्र से रहित होने पर भी मुझे अक्षय द्युलोक की प्राप्ति होगी। पाठकगण! आज अपनी अधोगति पर दृष्टि डालिए और प्राचीनकाल के पुरुषों की सत्यता को भी विचारिए। पिता के तनिक से सुख के लिये देव भीष्म व्रत को धारण करता है। आज कल के मनुष्यों की तरह नहीं कि आज व्रत किया, दूसरे दिन तनिक से विषय में फंस व्रत को भंग कर दिया। नहीं, नहीं, वीर ने जो व्रत किया उसको जीवन भर निवाहा। क्या इतिहास में ऐसा दूसरा उदाहरण मिल सकता है? इस तीव्र व्रत से वह भीष्म के नाम से प्रसिद्ध हो गए।

यद्यपि आत्मसमर्पण के बहुत से उदाहरण इतिहासों में मिलते हैं.—रामचन्द्र जी ने १४ वर्ष पिता की आज्ञा से दण्डक वन में काटे; परन्तु वह पिता की आज्ञा और अपना कर्तव्य था; भीष्म का कर्म्म स्वतन्त्रतापूर्वक था, पिता की आज्ञा नहीं थी; राम ने १४ साल स्त्री सम्भोग नहीं किया तो भीष्म सारी उमर पिता के सुख के लिये ब्रह्मचारी रहा; राम का आत्मत्याग थोड़े वर्षों के दुःख के लिये था, परन्तु भीष्म का आत्मत्याग आयु पर्यन्त के आनन्द और सुख को तिलाञ्जलि देनेवाला था। बुद्धदेव का आत्मत्याग अपने सुख (मुक्ति) के हेतु था, उसमें स्वार्थ टपकता है, परन्तु भीष्म ने दूसरे के सुख के लिये दुःख सहन किया।

संसार की सब जातियों के इतिहास को एक छोर से दूसरी छोर तक पढ़ जाओ, ऐसा उदाहरण न मिलेगा, ऐसे त्याग का नमूना दिखलाई नहीं पड़ेगा। अपने सुख स्वच्छन्द, तिसपर भारत के राज्य को केवल पिता के आनन्द के लिये न्योछावर करने का उदाहरण भूगोल के किसी राज घराने में न पाओगे। धन्य है यह भूमि जिसने ऐसे पुत्र उत्पन्न किए! धन्य है यह वेदों की शिक्षा जिसने ऐसा व्रतधारी वीर बनाया! वह कैसा सुन्दर और मनोहर समय रहा होगा जब ऐसे पुत्र माता की गोद में खेलते थे! वह कैसा उत्तम समय था जब ऐसे सदाचारी पुरुष उत्पन्न होते थे! आज चाहे हम अपनी मूर्खता से ब्रह्मचर्य्य पर उपहास करें, परन्तु समय आवेगा जब संसार इन्हीं नियमों को पुनः ग्रहण करेगा।

भीष्म जी की दृढ़ता

भीष्म जी के इस व्रत के पश्चात् राजा शान्तनु का विवाह उस कन्या (सत्यवती) से होगया और उसके गर्भ से राजा के दो पुत्र चित्रवीर्य्य और चित्राङ्ग उत्पन्न हुए। दोनों अभी बालक ही थे कि राजा शान्तनु ने प्राण त्याग दिया। पिता के पीछे राज्य का काम और उन बालकों का सारा प्रबन्ध भीष्म जी को दिया गया, जिन्होंने बालकों की तरुण अवस्था पर्य्यन्त अपने कर्तव्य को पिता की भांति निभाया, और पीछे उनको सब कारोबार सौंप दिया। चित्राङ्ग युवा अवस्था में ही परलोकगामी हुए। अभी उनका विवाह भी नहीं हुआ था। भीष्म जी को भाई की मृत्यु का बड़ा दुख हुआ; परन्तु उन्होंने बड़े धैर्य्य से उसको सहन किया।

चित्रवीर्य्य युवा थे। उनके विवाह की चिन्ता सत्यवती को लग रही थी, सत्यवती ने भीष्म जी से कहा कि काशीनरेश की दो कन्याएं अम्बिका और अम्बालिका हैं। यदि राजा अपनी कन्याएं चित्रवीर्य्य को व्याह दे तो बहुत ही अच्छा हो। काशीनरेश के साथ भीष्म जी की अनबन थी, इसलिये यह बात सम्भव न थी कि राजा स्वेच्छा से अपनी कन्याओं का विवाह कर देता। अन्त में युद्ध के पश्चात् भीष्म जी के भाई का विवाह उन दोनों कन्याओं से हो गया। यद्यपि सत्यवती ने वंश की वृद्धि के हेतु इतना यत्न किया, और भीष्म जी ने भी भाई के विवाह के लिये युद्ध किया; परन्तु यहां कुछ और ही होना था। चित्रवीर्य्य भी विवाह के थोड़े दिनों पश्चात् परलोक सिधार गए और दोनों रानियों को विधवा कर गए। अब शान्तनु के सिंहासन पर बैठनेवाला कोई न रहा और भारतखण्ड का राज्य बिना अधिकारी के होगया। तब सत्यवती ने सब मन्त्रियों की सम्मति से भीष्म जी से प्रार्थना की कि वह सिंहासनारूढ़ हों, परन्तु उन्होंने अस्वीकार किया। यह वही सत्यवती है कि जिसके लिये भीष्म जी को प्रण करना पड़ा था कि वह सिंहासन पर नहीं बैठेंगे, और आज वही सत्यवती भीष्म जी से विनय करती है कि तुम सिंहासन पर बैठो। अहा! समय की अद्भुत गति है! मनुष्य कुछ विचारता है और परमात्मा कुछ करता है। देव! तेरी लीला अपरम्पार है! मनुष्य बड़ा मूर्ख है जो तेरे किए हुए पर सन्तोष न कर लोभ से भटकता है और अपने जीवन को व्यर्थ खोता है। सत्यवती ने भीष्म जी को पुनः एकान्त में बुलाया और कहा—

मम पुत्रस्तव भ्राता वीर्य्यवान् सुप्रियश्च ते।
बाल एव गतः स्वर्गमपुत्रः पुरुषर्षभ।
इमे महिष्यौ भ्रातुस्ते काशीराजसुते शुभे
रूपयौवनसम्पन्ने पुत्रकामे च भारत।
तयोरुत्पादयापत्यन् सन्तानाय कुलस्यनः
मन्नियोगान्महाबाहो धर्मं कर्तुमिवार्हसि॥

अर्थात्, हे पुरुषश्रेष्ठ! मेरे पुत्र तेरे भाई वीर्य्यवान और सुन्दर बाल अवस्था में ही सन्तानहीन मर गए; उनकी दोनो स्त्रियां काशीनरेश की कन्याएं रूप यौवन से युक्त पुत्र की इच्छा करती हैं। इसलिये हे महाबाहो! मेरी आज्ञा से हमारे वंश की वृद्धि के लिये तू उनसे सन्तान उत्पन्न कर और तू ही इसके करने योग्य है।

माता के यह वचन सुन भीष्म जी चकित रह गए। विचारा कि क्या माता मुझे कुबीज समझती हैं जो ऐसा कहती है? क्या इसको मेरे व्रत का ध्यान नहीं? क्या इसने मुझे क्षत्रिय नहीं समझा? क्या इसने विचारा है कि मैंने इसके पिता के सम्मुख योंही मिथ्या प्रतिज्ञा की थी? भीष्म बड़े दुखित हुए, शरीर पसीने से भर गया। अन्त को बोले "माता! क्या तू मेरी परीक्षा करती है, या मुझे कायर समझती है? मैं क्षत्रिय हूं, स्मरण रख—

त्यजेच्च पृथिवी गन्धमापश्च रसमात्मनः
ज्योतिस्तथा त्यजेद्रूपं वायुः स्पर्शगुणं त्यजेत्
विक्रमं वृत्रहाजह्याद्धर्मं जह्याच्च धर्मराट्
नत्वहं सत्यमुत्स्रष्टुं व्यवसेयं कथञ्चन॥

पृथिवी अपने स्वाभाविक गुण गन्ध को त्याग दे, जल अपने गुण को त्याग दे, सूर्य्य अपने गुणरूप को छोड़ दे, वायु स्पर्श को छोड़ दे; इन्द्र अपने विक्रम को, और धर्मराज धर्म करना त्याग दे; परन्तु यह क्षत्रिय कदापि भी अपने वचन से नहीं हटेगा। भीष्म जी के यह वचन सुन सत्यवती बहुत निराश हुई, क्योंकि उस ने पहिले भीष्म को ऐसा दृढ़ न समझा था। वह नहीं जानती थी कि इस वीर के ब्रह्मचर्य्य व्रत को देख सैकड़ों पुरुष अपने जीवनों को पवित्र करेंगे; और यह संसार में अक्षय कीर्ति का भागी बनेगा। अन्त को भीष्म जी से वंश की वृद्धि का उपाय पूंछा। उन्होंने कहा कि प्राचीन वैदिक नियम नियोग से सन्तान उत्पत्ति करनी चाहिए और इस प्रयोजन के लिये कृष्ण द्वैपायन जी को, जिनका दूसरा नाम वेदव्यास है, बुलवाया और उनसे नियोग के द्वारा दो पुत्र उन दो रानियों के हुए—धृतराष्ट्र और पांडु! और विदुर दासीपुत्र थे। धृतराष्ट्र अन्धे थे, इसलिये उनको राज्य न मिला, विदुर दासी के पुत्र थे, इसलिये वे भी अधिकारी न समझे गए। तीसरे पांडु को सिंहासन मिला।

कौरव और पांडवों का झगड़ा

पांडु राजसिंहासन पर बैठ न्यायपूर्वक राज्य करने लगे। उनकी दो स्त्रियां थीं, एक कुन्ती जो श्रीकृष्ण जी के पिता की बहिन थी, दूसरी माद्री जो मद्र देश के राजा की कन्या थी। इन रानियों के गर्भ से राजा के ५ पुत्र हुए—युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन कुन्ती के गर्भ से, और नकुल सहदेव माद्री के गर्भ से। धृतराष्ट्र का विवाह गान्धार के राजा की कन्या गान्धारी से हुआ। यद्यपि राजा धृतराष्ट्र बड़े थे, और सिंहासन का अधिकार उनको था, परन्तु वह अन्धे थे, इसलिये उनको राज्य का कुछ भाग दे दिया गया, राज्य का अधिकार पांडु को मिला।

राजा धृतराष्ट्र के बहुत से पुत्र थे। उन सब में दुर्य्योधन बड़ा था। महाभारत के कर्ता ने धृतराष्ट्र की सन्तान को कौरव और पाण्डु की सन्तान को पाण्डव लिखा है। पाण्डव अभी बालक ही थे कि उनका पिता कालवश होगया। इसलिये वे सब अपने चचा धृतराष्ट्र के पास रहने लगे। युधिष्ठिर जो पांडु के सबसे बड़े पुत्र थे, राज्य के अधिकारी समझे गए, और इन्हींको राज्यतिलक लगाया गया। परन्तु राज्य का प्रबन्ध दुर्य्योधन करता था, क्योंकि धृतराष्ट्र आप कुछ कर नहीं सकते थे। इसलिये उसने अपने पुत्र को काम सौंप रक्खा था। दुर्य्योधन का स्वभाव बड़ा दुष्ट था। उसने विचारा कि यदि मैंने कुछ न किया तो राज्य चचा के लड़कों के ही हाथ में रहेगा और इनके पीछे इनकी सन्तान सँभाल लेगी और मेरा और मेरी सन्तान का जीवन इनकी सेवा में ही बीतेगा। उसने अपने मित्रों से सम्मति करके पांचों पांडवों को मार डालने का यत्न किया। भीष्म जी, जिनको दोनों भाइयों के पुत्र एक थे और जो युधिष्ठिर और दुर्य्योधन के स्वभाव से भली प्रकार परिचित थे, सदा दुर्य्योधन को समझाया करते थे। दुर्य्योधन भीष्म जी से बहुत डरता था। इसलिये उनके भय से वह अपनी इच्छा पूर्ण न कर सका। अन्त को यह निश्चय हुआ कि पांडव राज्य के दूसरे भाग में भेज दिए जांय। पांडव भीष्म जी के आज्ञानुसार वहां चले गए, परन्तु दुष्ट ने वहां भी दुष्टता की। लाह का घर उनके निवास के लिये बनवाया, जिसमें समय पा कर उसको आग लगा दी जावे और पांचों भाई जल मरें। पांडव वहां से विदुर की कृपा से बच कर निकल गए और बहुत वर्ष जङ्गलों में घूमते रहे। घूमते घूमते पाञ्चाल देश के राजा द्रुपद की कन्या के स्वयम्वर में पहुंचे, जहां अर्जुन ने, जो तीर चलाने में बड़े निपुण थे, अपनी धनुर्विद्या का अद्भुत प्रताप दिखाकर द्रौपदी से विवाह किया। दुर्य्योधन ने जब देखा कि पांडव बच कर निकल गए तो उसने शतरञ्ज का जाल फैलाया और युधिष्ठिर को, जिन्होंने अपने भुजबल से नया राज्य कायम कर लिया था, और बड़े

ऐश्वर्य्यवान भी होगए थे, धोखे से बुला कर जूए में फंसाया, जिसका परिणाम यह हुआ कि युधिष्ठिर सब कुछ हार गए और उन्होंने १२ वर्ष बनों में, जो उस जूए की शरत थी, बड़े दुख से काटे। १३वें वर्ष में पांडव लोग विराट राजा के पास जा भेष बदल कर रहने लगे। राजा विराट के पास बहुत सी गाएं थीं, और प्राचीन-काल में गाय ही देश का धन समझी जाती थी। क्योंकि यही घृत और दूध के देनेवाली है जो मनुष्य के शारीरिक और आत्मिक बल को बढ़ाने वाले हैं। इनकी हानि से सब प्रकार की हानि और इनकी वृद्धि से सब प्रकार की वृद्धि समझी जाती थी। इसलिये दुर्य्योधन ने विराट देश पर चढ़ाई की। भीष्म जी को सेना का नायक बनाया, जिन्हों ने तीन ओर से विराट पर धावा किया। अर्जुन ने उत्तरनामक विराट के पुत्र के साथ रण में जाने की राजा से आज्ञा लेली थी। अर्जुन ने इस चातुरी से सेना का प्रबन्ध किया और ऐसे बाण मारे कि भीष्म जी झट कह उठे कि विरोधियों में अर्जुन अवश्य है, अर्जुन के बिना ऐसे तीर मारना दूसरे का काम नहीं। अन्त को दुर्य्योधन अपने साथियों के साथ परास्त होकर अपनी राजधानी को भाग गया, और विराट का पुत्र आनन्दित हो अपनी राजधानी को लैाटा। राजा विराट को जब मालूम हुआ कि यह पांचों योद्धा पांडु के पांचों पुत्र हैं, तो वे अति प्रसन्न हुए और उन्होंने अपनी लड़की उत्तरा का विवाह अर्जुन से करने का विचार किया। अर्जुन ने, जो गानविद्या के बड़े पंडित थे, भेष बदल कर विराट की कन्या को गानविद्या सिखाने में अपना समय काटा था। इस कारण उन्होंने विराट का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया कि उत्तरा का मैं गुरु हूं और वह मेरी कन्या के समान है। निदान अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के साथ उसका विवाह ठैरा जो बड़ी धूम धाम से होगया।

पांडव १२ वर्ष से छिपे हुए थे, इसलिये भीष्म जी को इस युद्ध से पहिले उनका वृत्तान्त ज्ञात न था। पांडवों की वीरता और उनके सच्चरित्र को स्मरण कर और उनके दुःख का वृत्तान्त सुन वे अति क्लेशित हुए। वे जानते थे कि धृतराष्ट्र और उसके पुत्रों ने पांडवों को धोखा दिया है और उनका अधिकार छीना है। इसलिये अब पांडव अवश्य अपनी भुजबल से राज्य को लेने का यत्न करेंगे, क्योंकि वेही वंश में सबसे बड़े थे। भीष्म चाहते थे कि शान्ति से निबटेरा हो जाय और युद्ध तक नैाबत न पहुंचे। इस कार्य्य को करने के लिये वे धृतराष्ट्र के पास गए और उनको कहा कि तुम दुर्य्योधन को बुलाकर समझाओ कि पांडव उसके भाई हैं और राज्य के अधिकारी हैं। वे क्षत्रिय हैं, वीर हैं, अवश्य अपनी भुजा के बल से राज्य को लेने का यत्न करेंगे और फिर परिणाम जो होगा वह तुम आप विचार सकते हो।

भीष्म जी का दुर्य्योधन को समझाना

जब पांडवों का जीना सब पर प्रकट हो गया तो राजा द्रुपद ने भी यह शुभ समाचार सुन अपने आदमी विराट देश में भेज पांडवों को बुलवाया। पांडव विराट के राजा की आज्ञा से पांचाल देश में चले आए। श्री कृष्णजी, जो उस समय के बड़े नीतिज्ञ और यदुकुल के भूषण थे, पांडवों से मिलने के लिये पांचाल देश में गए। राजा द्रुपद और श्रीकृष्णजी ने पांडवों को सम्मति दी कि अपना अधिकार लेने के लिये यत्न करो। युधिष्ठिर ने कहा कि राज्य तो मैं दुर्य्योधन के पास जूए में हार चुका हूं, अब कैसे मांग सकता हूं और यत्न कर सकता हूं? श्रीकृष्णजी ने कहा कि दुर्य्योधन ने धोखे से बाज़ी जीती है और कोई कार्य्य न्यायपूर्वक नहीं किया है, इस लिये उसको अवश्य दंड देना चाहिए। यद्यपि पांडव इसके विरुद्ध थे, परन्तु अन्त को कृष्ण जी के समझाने से राज़ी हो गए और राजा द्रुपद का पुरोहित दूत बन कैारवों के पास गया। दूत ने कैारवों की सभा में जा अपने राजा का संदेशा कहा और समझाया कि पांडव इस समय नम्रता से राज्य

का अपना भाग मांगते हैं; अच्छा होगा यदि आप लोग स्वीकार करें, नहीं तो युद्ध होगा, वंश नष्ट हो जायंगे, देश का सत्यानाश करोगे। विचार करो और बतलाओ कि क्या आज्ञा है।

भीष्म जी, जो सभा में विद्यमान थे, बोले "हमारे बड़े धन्य भाग हैं कि हम पांडवों के शुभ समाचार सुनते हैं। इतने दुःख सहन कर के भी वे धर्म पर स्थित हैं और देखिए, नम्रता पूर्वक अपना भाग मांगते हैं। क्या वे युद्ध से नहीं ले सकते हैं? परन्तु वे धर्म छोड़ना योग्य नहीं समझते। अर्जुन बड़ा वीर है, मुझे उसके सामने खड़ा होनेवाला योद्धा और कोई देख नहीं पड़ता।" अभी वे बोल ही रहे थे कि कर्ण अति क्रोधित हो उनकी बात काट बोला "हे भीष्म! तुम बूढ़े हो गए हो, तुम्हारी इन्द्रियां शिथिल हो गई हैं, इसी लिये तुम्हें कोई योद्धा अर्जुन सा नहीं देख पड़ता। पांडव अपना अधिकार जूए में हार गए, अब उनको गज़भर भूमि भी नहीं दी जायगी, युद्ध होगा और अर्जुन की वीरता भी मालूम हो जायगी"। कर्ण की बातें सुन भीष्म जी बड़े क्रोध में आए, परन्तु अपने क्रोध को थोड़ी देर में शान्त कर बोले "ए कर्ण, क्या तू स्वयम्वर का दिन भूल गया? उस दिन तेरी वीरता कहां गई थी? विराट के राज्य पर जब धावा हुआ और अर्जुन के तीरों ने जब सेना को परास्त कर दिया था, उस समय तेरा वीरत्व कहां गया था? ए वीर! मैं तो बूढ़ा हो गया हूं, इसमें कोई संदेह नहीं; परन्तु सत्य जानो मैं युद्ध से भय नहीं करता"। राजा धृतराष्ट्र ने दूत को कहा कि कल विचार कर उत्तर दिया जावेगा। दूसरे दिन पांडवों के पास दूत भेजा गया और कह दिया गया कि युद्ध के बिना गज़ भर भी भूमि नहीं मिलेगी। जब श्री कृष्ण जी ने कौरवों का उत्तर सुना तो उन्होंने यह आवश्यक समझा कि आप जाकर ठीक ठीक फैसला कर आवें। युधिष्ठिर ने भी श्री कृष्ण से निवेदन किया कि जहां तक हो शान्ति ही करनी चाहिए। आप न्यायपूर्वक कार्य्य कराने का यत्न कीजिए। श्री कृष्ण जी दूत बन कौरवों की सभा में पहुंचे और उन्होंने धृतराष्ट्र को समझाया और अपने आने का कारण कहा। धृतराष्ट्र चुप रहे। दुर्य्योधन ने कहा कि हे कृष्ण! तुम ही सब युद्ध के कारण हो। हम कभी भी पांडवों को राज्य का भाग नहीं देंगे। श्रीकृष्ण जी ने कहा वंश के बड़े और धर्म के ज्ञाता भीष्म जी सभा में विद्यमान हैं, उनके होते हुए तुम्हारा कोई अधिकार नहीं कि तुम कुछ कहो। भीष्म जी इस समय तक विचार में मग्न थे। कृष्ण जी के वाक्य सुन दुर्य्योधन से बोले "हे दुर्य्योधन! शोक है कि तू अपने दुष्ट मित्रों के कहने पर चल धर्म अधर्म का विचार नहीं करता। स्मरण रख, सदा सत्य की जय हुआ करती है। शास्त्रों ने कहा है–

सत्यमेव जयते नानृतं

सदा सत्य की जीत होगी, क्या इन सब पापों को करके भी तू राज्य को अपने साथ ले जायगा? अरे मूर्ख! अधर्म का त्याग कर, न्यायपूर्वक जो तेरा भाग है उसको ले। अधर्म से यदि चक्रवर्ती राज्य भी मिले तो उस पर लात मार। धोखे से तूने युधिष्ठिर का राज्य छीना, उनको जंगल में भेजा, इतने दुःख दिए; और अब, जब वे नम्रतापूर्वक फिर अपना अधिकार मांगते हैं तो, तू युद्ध का भय दिखाता है! क्या तुझे भीम की भयङ्कर गदा का आघात भूल गया! अरे, जिस समय वह वीर गदा लेकर रण में आवेगा तो तेरा रक्त सूख जावेगा। उस समय तू मेरी शिक्षा को याद करेगा। युद्ध का नाम न ले, पांडवों का सामना करना हँसी नहीं। कृष्ण जी आप इतना क्लेश उठा यहां आए हैं जिसमें किसी तरह युद्ध न हो, आपस में शान्ति से फैसला होजाय। परन्तु तू अपने और कर्ण के घमण्ड में किसीकी सुनता ही नहीं। हे दुर्य्योधन! कृष्ण जी की सम्मति के अनुसार कार्य्य कर, तेरा इसी में कल्याण है"। विदुर ने भी भीष्म का अनुमोदन किया, परन्तु किसी ने ठीक कहा है–

विनाशकाले विपरीत बुद्धिः

उस निर्बुद्धि के हृदय पर किसी की बात का कुछ प्रभाव न हुआ, वह उलटा भीष्म जी को कहने लगा कि आप युद्ध से भय करते हैं और कायरता की बातें कहते हैं। परन्तु भीष्म जी ने कहा कि हम क्षत्रिय हैं युद्ध में जाने से भय कदापि नहीं करते, परन्तु युद्ध के फल से भय अवश्य करते हैं। अच्छा हो यदि शान्ति हो जाय। भीष्म जी ने बहुत समझाया, परन्तु उसने स्पष्ट कह दिया कि मैं तो एक सूई की नोक के बराबर भी कोई वस्तु पांडवों को नहीं दूंगा। श्री कृष्ण और भीष्म जी का सारा प्रयत्न निष्फल गया। भीष्म जी यदि पांडवों को अपना अधिकार छोड़ने के लिये कहते तो पांडव अवश्य छोड़ देते। परन्तु उनका जीवन क्या था, धर्म का साक्षात रूप था। वे अपने और दूसरे के कर्तव्य का पूर्णतया विचार करनेवाले थे, सदा न्यायानुकूल पक्षपात रहित जो कर्म होता, उसको करना अपना धर्म समझते, चाहे उसके लिये अपना शरीर ही क्यों न चला जाय।

जब कृष्ण जी का आना भी निष्फल हुआ तो भीष्म जी को युद्ध अटल प्रतीत होने लगा। परन्तु उन्होंने पुनः एक बार यत्न किया और धृतराष्ट्र और उसके पुत्र को समझाया कि शान्ति से आपस में सन्धि कर लो, परन्तु कुछ न हुआ। अन्त को भीष्म जी ने कहा कि मुझे और कोई शोक नहीं केवल यही अधिक दुःख है कि युधिष्ठिर से सामना करना होगा, जो पित्रों की श्रद्धा पूर्वक सेवा करनेवाला है और सदा धर्म पर दृढ़ है।

[शेष आगे।

एक विद्यार्थी।

विनय

प्रभु हो पुनि भूतल अवतरिए।
अपुने या प्यारे भारत के पुनि दुख दारिद हरिए॥
धरम गिलानि होति जबही जब तब तब तुम वपु धारत।
दुष्टन हरि साधुन निर्भय करि तब ही धरम उबारत॥
महा अविद्या राच्छस ने या देसहिं बहुत सतायो।
साहस, पुरुषारथ, उद्यम, धन, सबहो निधिन गंवायो॥
काल, पात्र अधिकार विरोधी सब ही कारज साधैं।
सांचे धर्म छांड़ि मिथ्या बिश्वासन ही आराधैं॥
जेते गुन जग में बढ़िवे के ते अवगुन इन लेखे।
देखि प्रतच्छ प्रमान अनेकहु करत हाय अनदेखे॥
जो कोउ हित की कहत बात तौ कोपैं सब ही भारी।
धरम बहिरमुख, मूरख, नास्तिक कहि कहि देवैं गारी॥
कहँ लगि कहौं दयानिधि इनकी सबहि भए मतवारे।
जो तुम सांचे जगतपिता तौ क्यों न दया उर धारे॥
जौ कोउ कबहुं धरम परचारक भाग्यन ही सों जनमे।
तौ वे शुष्क जगत स्वारथरत भक्ति नेकु नहिं मन में॥
झूठे मन केवल बनावटी तुव अस्तित्वहिं मानैं।
करिकै ओट धरमग्रन्थन की भेद और जिय ठानैं॥
जद्यपि निहचय देस दसा लखि कोउ कोउ दुःखित भारी।
पै ये देशकाल बिनु सोचे चलत चाल हितकारी॥

ताहो तें इनके बातन को होत प्रभाव न नेको ।
तैंतिस कोटि अछत बढ़वत ये संख्या और अनेको ॥
करुनामय ! शङ्करस्वामी सम पुनि भूतल वपु धारौ ।
मेटि सकल उपधर्म भ्रमित विश्वासहिं जड़ सों जारौ ॥
थापि प्रेम मन भक्ति अचल सांचे गुन हिन्दुन दीजै ।
मूल धर्म निरधारित करि प्रभु त्राहि ! कल्यानहि कीजै ॥
उद्धत भए सबै मनमाने बिना तुम्हारे आए ।
काहू की न सुनेंगे ये करिहैं निज निज मन भाए ॥
जो यह बात न मन में आवै तो मघवा कों टेरौ ।
हुकुम देहु दल बल समेत भारत पै डारै डेरौ ।
पूर्न प्रताप प्रलय बरसा करि छिन में याहि बहावै ।
रहै न नाम हिन्द हिन्दू को जग में अब न लजावै ॥
देखो जग उपहासास्पद ह्वै तुम्हरो नाम धरावैं ।
कृष्ण कृपानिधि ! कृष्णकाय ये तुम्हरी विरद हँसावैं ॥
कै मारौ कै तारौ इनको कछु निस्तार लगाओ ।
त्राहि त्राहि करुनामय केशव ! दासहिं प्रभु अपुनाओ ॥ १ ॥

जानकी जयमाल

पिता असम्भव पन पूरित लखि आनन्दित अति ।
सोत्साह जयमाल लिये धाई चञ्चल गति ॥
रविकुल रवि तट पहुंचि रूप के तेज बिमोहित ।
भूलि तन दसा रही चित्र पुतरी सी सोहित ॥
लखि प्रेम बिवस पिय जब झुके अति सँकोच डारी गरैं
यह प्रेममई मूरति दोऊ नित नित नव मङ्गल करैं ॥

सुनीति

[अनुवाद]

मूर्ख शिष्य उपदेस, पालन नारि कुलच्छिनी ।
दुखियन सङ्ग हमेस, पण्डित हू दुख नित लहहिं ॥
कुलटा नारी, मित्र सठ, उत्तरदायक दास ।
गृह ससर्प के बास तें, मृत्यु हथेली पास ॥
आपद हित धन रच्छिए, धन दै रच्छिय नारि ।
आपुहु रच्छिय सर्वदा धन अरु नारि बिसारि ॥
आपद हित धन रच्छहीं धनियन कों कह क्लेस ।
पै लक्ष्मी जब पग करत रहै न सञ्चित लेस ॥
नहिं सम्मान, न जीविका, नहिं बान्धव जेहि देस ।
नहिं विद्या चरचा, तहां बसिकै पावत क्लेस ॥
धनी, वेदविद बिप्र, नृप, नदी, वैद्य ये पांच ?
जहां होहिं नहिं तहं बसे निहचै पावै आंच ॥
भय, उदारता, कुशलता, लाज, जीविका वित्त ।
जिनमें नहिं ये पांच गुन तिनकों करै न मित्त ॥
काम पड़न पैं भृत्य अरु बान्धव सङ्कट काल ।
मित्र विपति में परखिए धन छय जानिय बाल ॥
रोग, दुःख, दुर्भिक्ष अरु राजद्वार, मसान ।
शत्रु घिरे में साथ जे ते हैं बन्धु महान ॥
ध्रुव तजि अध्रुव आस बस धावहिं जे अज्ञान ।
ध्रुवहू खोवहिं व्यर्थ ते अध्रुव प्रथम नसान ॥
रूपहीन हूं सुकुल की ब्याहहिं सुता सुजान ।
रूपवती कुल नीच तजि सोहत ब्याह समान ॥

नदी, शस्त्रधारी, नखी, शृङ्गी, राजा नारि।
भूलि न इन्हें पतीजिए बुध जन कहत विचारि ॥
विष ते अमृत काढ़िए सुवरन अशुचि विहाय।
नारि रत्न दुष्कुलहु तें विद्या नीचहु पाय ॥
कुल नारिन भोजन द्विगुन लज्जा चौगुन नैन।
साहस षटगुन, आठ गुन तन में व्यापत मैन ॥

श्रीराधाकृष्णदास

काव्यसरोवर

चल मन! काव्य सरोवर तीर,
जहं सद्भाव सरोज प्रस्फुटित,
मन आमोद सुसीर।
सो सरोज दल नव रस मधुमय,
पूरन छटा प्रकाशे।
तासों नहीं मिष्ट कोउ परिमल,
कमल मध्य आभासे ॥
कत सुख होत न तासु घ्राण से,
यह निश्चय अनुमान।
भाउक भ्रमर मत्त मधु छकि छकि
चाहत मधु नहिं आन ॥
नव कल्पना संग बांध्यौ है,
या सरवर का तीर।
लालित्यता रूप है जाको,
शोभित निर्मल नीर ॥
नाना छन्द हंसगण राजत,
है अन्तर आनन्द।
विचरण करत नित्य पत्रोपरि
वसि वसि तहँ स्वच्छन्द ॥
जलचरगण तिहि मध्य विराजैं;
यति यमकानुप्रास।
सुख से करत नित्य नव क्रीड़ा,
लखि लखि भूलत त्रास ॥
अलंकार सारससमूह को,
मन्द मन्द झँकार।
श्रवण श्रवण महँ प्रविशि अधिकतर
करत सु सुख संचार ॥
जल करि बिन्दुपात वा सर को
सन्तापित को प्रान।
होत स्निग्ध ततकाल औशि ही,
निश्चय यह कर ध्यान ॥
एक बार सुस्पर्श किए ते,
वा सरवर को नीर।
नाना भांति भावना अगिनी,
होत शान्त अति धीर ॥
जो महान या विधि पुष्कर को,
करत सृष्टि सो धन्य!
नहीं अलौकिक शक्ति मान है,
तासों दीसत अन्य ॥

जानकी प्रसाद तिवारी,

श्रीगुरु अर्जुन जी

संसार की सदा से यह रीति चली आई है कि यहां दो प्रकार के मनुष्य उत्पन्न होते हैं, एक भले और दूसरे बुरे। केवल मनुष्य ही क्यों, चाहे जिस वस्तु विशेष पर ध्यान दीजिए, सबमें दो प्रकार की श्रेणी दिखाई देगी। एक तो उनमें से उत्तम श्रेणी का है और दूसरा निकृष्ट। दूर क्यों जाते हैं, एक बड़ी नदी ही का प्रमाण लीजिए; देखिए कितने हो दुर्गन्धयुक्त नाले उस महानद के स्वच्छ जल में आकर मिलते हैं। वे अपने भर सक उस महानद को गंदा करने में कोई बात उठा नहीं रखते, परन्तु क्या उस महानद के बहते हुए स्वच्छ जल को वे अपनी नाईं गंदा कर सकते हैं? नहीं, कभी नहीं! वह नद ऐसा महान है कि उन सब नालों को हज़म कर जाता है और फिर भी उसका जल जैसे का तैसा स्वच्छ बना रहता है।

यही दशा मनुष्यलोक की भी है। यहां कोई महानुभाव महात्मा जन्मग्रहण करता है तो उसके विपरीतभाव वाले असंख्य मनुष्य उसे हानि पहुं-



बाबू राधाकृष्णदास ।

H. C. P.

चाने की यथासाध्य चेष्टा करते हैं। परन्तु उन पामरों का यह वैर उस उदारचित्त महात्मा के महान हृदय में लीन हो जाता है। अन्त को उन्हें स्वयम् लज्जित होना पड़ता है और वह अलौकिक पुरुष अपने सद्गुणों से लोगों को मोहित कर, उन का आदर्श हो जाता है और गोस्वामी तुलसीदास जी के इस वाक्य को सार्थक कर दिखाता है कि "बूंद अघात सहैं गिरि कैसे। खल के बचन साधु सह जैसे"। इन्हीं महात्माओं की श्रेणी में सिक्खों के पांचवें गुरु अर्जुन जी भी थे। इनके महान हृदय का परिचय आप लोगों को आगे चल कर मिलेगा। गुरु रामदास जी के चरित्र में आप लोग पढ़ आए हैं कि उन्हें तीन पुत्र थे—पहिले पृथिवी-चंद, दूसरे महादेव और तीसरे हमारे चरित्रनायक अर्जुन जी। अर्जुन जी का जन्म संवत १९२० मिती वैशाख सुदी ३ मंगलवार के दिन रामदास जी की प्रियपत्नी भानी जी के गर्भ से मुकाम गोइंदवाल में हुआ था। गुरु रामदास जी के दो लड़के बड़े नालायक थे। वे कभी भी पिता की आज्ञा नहीं मानते और सर्वदा वैसे ही काम किया करते थे जो रामदास जी को अधिक नापसन्द होते। परन्तु उनके तीसरे और सबसे छोटे पुत्र अर्जुनजी का आचरण अपने बड़े भाइयों से सर्वथा विपरीत था। वे सर्वदा पिता की आज्ञा में चलते और बड़ी भक्ति से पिता माता की सेवा किया करते थे। इस कारण पिता का भी उन पर विशेष स्नेह था। परन्तु उनका बड़ा पुत्र पिता का स्नेह अर्जुन जी पर अधिक देखकर सदा मन में जला करता था कि कहीं हमारे पिता अर्जुन को ही गुरुगद्दी न दे दें। इस कारण वह सर्वदा अपने सबसे छोटे भाई अर्जुन जी का बुरा विचारा करता। एक समय का वृत्तान्त है कि किसी कार्यविशेष के कारण रामदास जी ने अपने बड़े पुत्र पृथिवीचंद को लाहोर जाने की आज्ञा दी। इस ख्याल से कि मेरी अनुपस्थिति में पिता कहीं अर्जुन को गद्दी न दे दे, उसने लाहोर जाने से साफ़ इंकार किया। रामदास जी को पुत्र के इस आचरण से बड़ा दुःख और क्रोध हुआ। उन्होंने अर्जुन जी को बुलाकर लाहोर जाने को कहा और साथही यह भी कह दिया कि जब तक "मैं तुझे न बुलाऊं, तू घर मत आइयो"। अर्जुन जी ने पिता की आज्ञा सुनते ही लाहोर की ओर कूच कर दिया और वे पिता का काम पूरा कर वहां रहने लगे। जब बहुत दिन हो गए और पिता ने अर्जुन जी की कुछ खोज खबर न ली, तब घबड़ा कर अर्जुन जी ने पिता को पत्र लिखा। अर्जुन जी का बड़ा भाई तो सदा उनसे वैर करने के घात में लगा ही रहता था, अतएव पत्र वाहक से मिलकर मार्ग ही में उसने चिट्ठी गुम कर दी। बहुत दिनों तक उत्तर की अपेक्षा करने पर जब अर्जुन जी को पिता की कोई चिट्ठी भी न मिली तब उन्होंने एक दूसरी चिट्ठी लिखी। पृथिवीचंद की दुष्टता के कारण वह चिट्ठी भी रामदास जी तक न पहुंच पाई। अन्त को उकता कर अर्जुन जी ने अपने एक विश्वासपात्र मित्र के हाथ पिता को तीसरी चिट्ठी भेजी। सौभाग्यवश इस बार पृथिवीचंद की कोई कला न चली और वह चिट्ठी रामदास जी के निकट निर्विघ्न पहुंच गई। दो चिट्ठी के गुम होने का हाल विदित होने पर गुरु रामदास जी को पृथिवीचन्द ही पर सन्देह हुआ और उसको बुला कर जब उन्होंने चिट्ठी के बारे में पूछा तो वह बिलकुल अनजान बन गया। अन्त को जब रामदास जी ने उसकी तलाशी ली तो उसकी जेब से दोनों चिट्ठियां साफ़ निकल आईं। रामदास जी ने पृथिवीचन्द को बड़ी डांट बताई और वह बड़बड़ाता हुआ घर से बाहर चला गया। उस दिन से उसने अपने पिता और भ्राता से और भी अधिक विरोध करना आरम्भ किया।

रामदास जी ने अर्जुन जी को लाहोर से बुला भेजा और उनकी पितृभक्ति से अधिक संतुष्ट हो कर उनको अपना उत्तराधिकारी बनाया।

अर्जुन जी का दो विवाह हुआ था, पहिले तो

संवत १६३२ में चन्दनदास सेठी की लड़की रामदेवी से, और दूसरा संवत १६४७ में किसनचन्द खत्री की लड़की गंगाजी से। पहिली स्त्री से सन्तान न होने के कारण ही गुरु साहब को दूसरा विवाह करना पड़ा था। इन्हीं गङ्गादेवी के गर्भ से महात्मा हरगोविन्द जी ने जन्मग्रहण किया था, जो अर्जुन जी के बाद गुरु की गद्दी पर बैठे थे और जिनके प्रताप और धर्मरक्षा का हाल "सरस्वती" की आगामी संख्या में आप लोगों के नयनगोचर होगा।

संवत १६३८ में गुरु अर्जुन जी ने गद्दी प्राप्त की थी। अपने पूर्व पुरुषों की भांति ये भी सब गुणों से सम्पन्न थे। समागत भक्तजनों को अपने मधुर सम्भाषण से सन्तुष्ट रखना, गुरु नानक जी के सत्य सिद्धान्तों का मधुर उपदेशों द्वारा प्रचार करना, धर्मशाला और बावली इत्यादि बनवाना, ये सब तो इनके नित्य के काम थे। अमृतसर में जो बावली "तरन तारन" के नाम से विख्यात है उसकी नीव इन्हेंाही ने डाली थी। इसके सिवाय गुरु अर्जुन जी ने भेंट वसूल करने का एक नया उपाय निकाला। उन्होंने कई गुमाश्ते इस काम पर नियत कर दिए कि वे प्रत्येक सिक्ख जमीदार की जमीदारी में जाकर रहें और उसकी तमाम जमीदारी के आमदनी का दसवां भाग लेकर सङ्गत में भेजदें*। इस उपाय से अर्जुन जी को द्रव्य की कमी न रही और दान पुण्य का काम बे रोक टोक चलने लगा। कदाचित् ही ऐसा कोई दिन जाता होगा, कि जिस दिन भूखों और अभ्यागतों को भोजन न मिलता हो। प्रतिदिन प्रसाद बाँटा करता था और एक घड़ी के लिये भी लङ्गर ठंढा नहीं होता था।

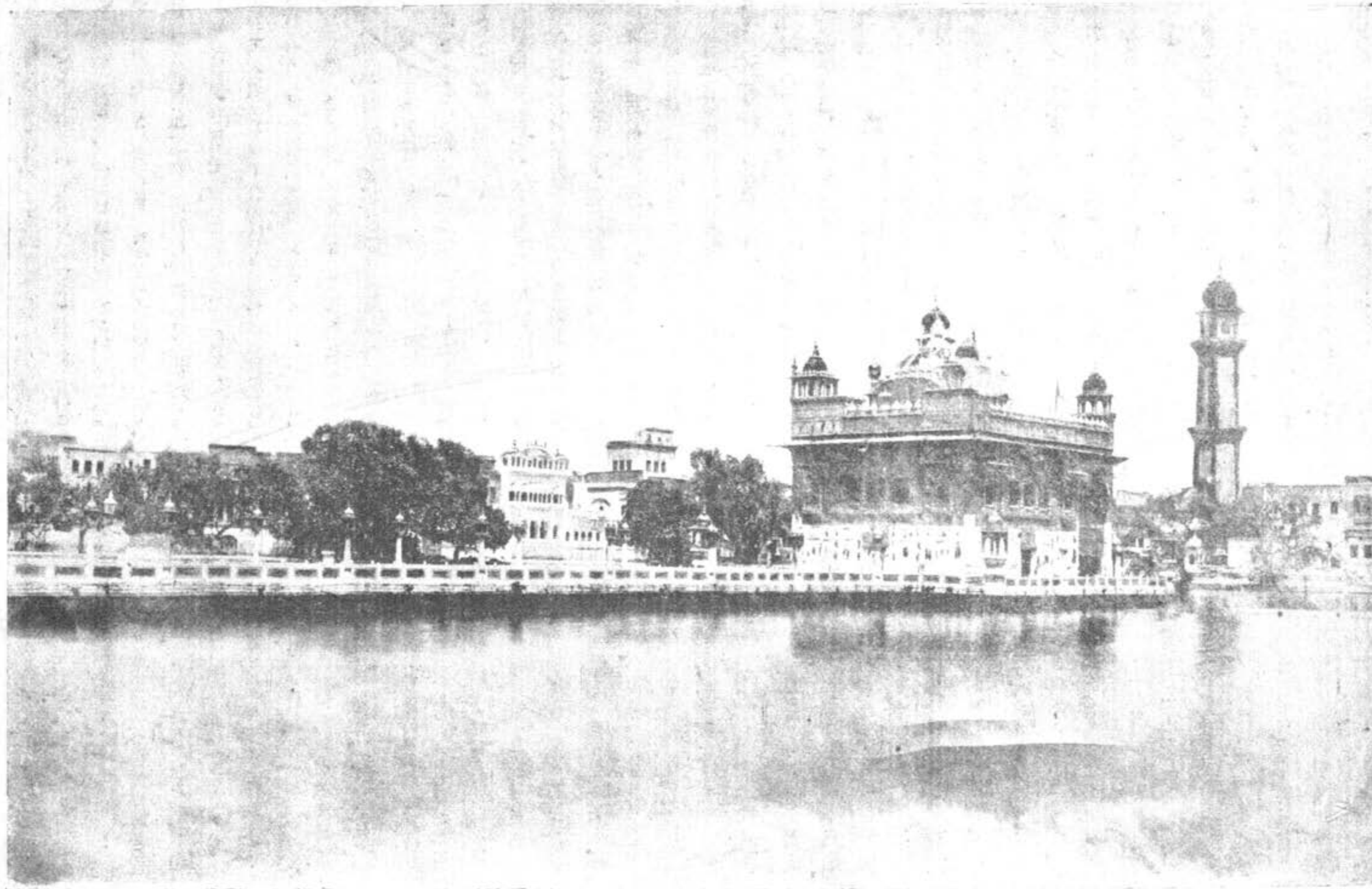
एक समय का वृत्तान्त है कि गुरु अर्जुन जी के निकट एक सन्तोषा नामक खत्रीपुत्र कामना से आया और उसने उन्हें बहुत सा धन रत्नादिक भेंट दिया। अर्जुन जी ने उस धन से सन्तोषसर नामक एक तालाब खुदवाना प्रारम्भ किया। प्रायः तीन गज़ भूमी खोदी गई होगी कि इतने में फावड़ा किसी कठिन वस्तु से टकराया। मिट्टी हटाने पर एक गुमटी निकल आई। जब बड़ी कठिनाई से उस गुमटी का दरवाज़ा खोला गया तो भीतर एक योगी ध्यानमग्न बैठा दिखाई दिया। अनेक प्रकार के उपाय करने पर जब योगी जी के ध्यान खुले तो अपने सम्मुख के लोगों को देख कर वह बड़े आश्चर्यित हुए। गुरु अर्जुन जी ने उस योगाभ्यासी महात्मा से आलाप करना प्रारम्भ किया। बात चीत करने पर विदित हुआ, वह योगी महाशय श्रीरामचन्द्र जी के समय से वहां तपस्या कर रहे हैं। किसी कारणवश उनके गुरु राजर्षि जनक जी ने उन्हें शाप दिया था कि "तू पापरूपी कलियुग देखेगा और जब संसार में गुरु नानक जी अथवा उनके उत्तराधिकारी किसी गुरु का तू दर्शन करेगा तब तेरी मुक्ति होगी"। इतना कह कर योगी ने प्राण छोड़ दिए। हम नहीं कह सकते कि ऊपर लिखी घटना कहां तक सत्य है। इसके विचारने का भार हम विचारवान् पाठकों ही पर छोड़ कर अपने लेख का सिलसिला जारी रखते हैं।

आज दिन अमृतसर का सिक्ख मन्दिर जो "दरबार साहब *" के नाम से विख्यात है, इन्हीं गुरु अर्जुन जी ही की कीर्ति है। संवत् १६४५ में इस तालाब को, जिसकी नीव गुरु रामदास जी ने डाली थी, इन्होंने बनवा कर पूरा किया और तालाब के बीच में एक अत्यन्त सुन्दर मन्दिर निर्माण करवाया जिसकी शोभा आज तांई दर्शकों का मन मोह लेती है।

गुरु अर्जुन जी ने अपने सिक्खों को अमृतसर की आबादी बढ़ाने की आज्ञा दी। इस कारण आस पास के सिक्ख सब ग्राम छोड़ छोड़ कर अमृतसर में आ बसे।

* यह रीति बराबर दसवें गुरु तक जारी रही।

* इस मन्दिर को संवत १८१८ में काबुल के बादशाह अहमद शाह अब्दली ने गिरवा दिया था। फिर महाराज रणजीत सिंह जी ने इसका जीर्णोद्धार करवाया।



मन्दिर दरबार साहब—अमृतसर ।

एक समय लाहोर का हाकिम हुस्न खां इनके दर्शनों को आया। वह इनके धर्म्मोपदेशों से ऐसा मुग्ध हो गया कि सर्वदा इनके आज्ञानुसार सब काम करने लगा। अर्जुन जी के नाम पर उसने लाहोर पुर्वी बाज़ार में एक बावली भी बनवाई थी। आज दिन सिक्ख लोग जिस ग्रन्थ साहब को पवित्र मानते और जिसकी पूजा करते हैं, उसको संग्रह कर लिखने का गौरव भी अर्जुन ही जी के बांटे पड़ा है। इन्होंही ने श्री गुरु नानक जी की भक्तिपूर्ण बाणियों को इकट्ठा कर ग्रन्थ साहब लिखा। इस ग्रन्थ में उन्होंने अन्य अन्य प्रसिद्ध भक्तों के भजन भी भिन्न भिन्न राग रागिनियों में लिपिबद्ध किए हैं। सिक्खों की प्रत्येक सङ्गत में इसकी प्रतिलिपि वर्तमान है। इसकी पूजा होती है, और कड़ाह प्रसाद (हलुवा) भोग लगता है। मरने के समय सिक्ख लोग ग्रन्थ साहब का पाठ सुनते हैं। गुरु अर्जुन जी ने जिस ग्रन्थ को लिखा था, अमृतसर दरबार साहब में उसकी पूजा होती है। बैशाखी के मेले में, जो बैशाख मास में होता है, सर्व साधारण बिना रोक टोक के ग्रन्थ साहब का दर्शन कर पाते हैं। इस ग्रन्थ साहब को संवत १८८८ में पञ्जाब केशरी महाराजा रणजीत सिंह ने दर्शनार्थ उठवा मंगवाया था और २५०००) इसको भेंट दिए थे। इसके पीछे संवत १९१६ में पटियाला के राजा नरेन्द्र सिंह ने भी इसे दर्शन हेतु मंगवा भेजा था और दर्शन पूजन के अनन्तर ७००) की जागीर भेंट दी थी। बड़ी बड़ी दूर से लोग अर्जुन जी के दर्शन को आया करते थे और उन्हें धन रत्नादिक भेट दिया करते थे। परन्तु उस धन का अधिकांश सत्कार्य में व्यय होता था। इसी समय में अमृतसर में गुरु की बाजार भी बनी थी। उसी समय के लगभग लाहोर के हाकिम वज़ीर खां का जलन्धर रोग गुरु जी ने अपने शिष्य भाई बृढ़ा से आराम करवाया था।

आप लोगों को याद होगा कि गुरु अर्जुन जी का बड़ा भाई पृथिवीचन्द जब से घर से निकल के गया, बराबर अर्जुन जी की अनिष्टचेष्टा में लगा रहता था। परन्तु अर्जुन जी के चढ़ते प्रताप के सामने उसकी कोई चेष्टा भी सफल नहीं होती थी, यहां तक कि उसने एक बार शाहनशाह अकबर से जाकर शिकायत की कि अर्जुन जी डकैतों के सर्दार हैं और उनके शिष्य सब डाँकू हैं। इन लोगों ने डकैती से ही इतना ऐश्वर्य बढ़ा लिया है। गुरुआई इत्यादि, लोगों को ठगने के लिये, सब इनका भंडपना है। अकबर ने पृथिवीचन्द की बातों पर विश्वास करके अर्जुन जी की गिरफ्तारी के लिये पृथिवीचन्द के साथ एक अफ़सर कर दिया। परन्तु दैवसंयोग से वह अफ़सर मार्ग ही में अग्नि से जल कर मर गया। अन्त में जब अकबर ने एक योग्य मनुष्य को अर्जुन जी का सच्चा हाल जानने के लिये भेजा तो वह अर्जुन जी की सरलता, भगवद्भक्ति देख कर परम सन्तुष्ट हुआ और अकबर से आकर उसने सब हाल कहा। अकबर स्वयम् उनके दर्शनों को गया और वहां जाकर ग्रन्थ साहब सुनना चाहा, क्योंकि अर्जुन जी के विपक्षियों ने उसे यह भड़का दिया था कि ग्रन्थ साहब में अर्जुन जी ने राजविद्रोह की बातें लिख रक्खी हैं। अर्जुन जी ने बिना सङ्कोच के सब प्रकार से उलट फेर कर जैसा बादशाह ने फरमाया, ग्रन्थ साहब सुना दिया। क्रोधित होना तो दूर रहा, वरन् अपूर्व भक्तिरसपूर्ण भजनावलियों को सुनकर उसका मन मुग्ध हो गया और उसने बड़े भक्ति भाव से ग्रन्थ साहब को ५१ अशरफ़ी भेंट की और अर्जुन जी के मधुर सम्भाषणों से प्रसन्न होकर वह उन पर विशेष श्रद्धा भक्ति रखने लगा, तथा एक वर्ष के लिये अर्जुन जी ने उस प्रान्त का कुल लगान अकबर से माफ़ करवा दिया। इसका कारण यह था कि उस वर्ष उस प्रान्त में अकाल पड़ गया था और ऐसी अवस्था में सुकाल की भांति राजकर देना गरीब किसानों के लिये सर्वथा असम्भव था। अतएव उन लोगों ने गुरु अर्जुन जी की शरण पकड़ी थी

श्रोर उन्हींके उपकार करने की नीयत से अर्जुन जी ने अकबर को लगान माफ़ कर देने का अनुरोध किया था। दयाशील बादशाह ने भी अर्जुन जी का मनोरथ सफल किया। जब अर्जुन जी के चिरशत्रु पृथिवीचन्द श्रोर उसके साथियों ने देखा कि 'हमलोग जितना ही अर्जुन जी की अनिष्टचेष्टा करते हैं, उतना ही इनका यश श्रोर प्रताप श्रोर भी बढ़ता जाता है,' तो उन लोगों के हृदय में ईर्षानल रात दिन दहकने लगी। पाठकगण! आप लोगों को कदाचित् कहना नहीं होगा कि इन सब बुराइयों के मूल अर्जुन जी के सगे भाई पृथिवीचन्द ही थे। हाय, भारत, तू कैसो दुर्भाग्य है। आज नया नहीं, लाखों वर्ष से लोग देखते श्रोर सुनते चले आते हैं कि भ्रातृविरोध का कैसा खोटा परिणाम हुआ है। इसी भ्रातृविरोध ने लङ्का का नाश करवाया, इसीने महाभारत करवा कर पृथ्वी वीरशून्य कर डाली, परन्तु तैाभी भारतवासी नहीं चेतते। भाइयो, एक बार श्री रामचन्द्र जी के वचन की श्रोर तो टुक ध्यान दो। देखो, रावण के साथ युद्ध करते समय जब लक्ष्मण जी को शक्ति लगी है तो उन्होंने क्या कह कर विलाप किया है "अस विचार उठहु तुम ताता। मिलहि न पुनी सहोदर भ्राता"। आहा, क्या भातृप्रेम है! शरीर पुलकित हो जाता है! परन्तु शोक है कि ऐसे ऐसे उच्च आदर्श सामने रहते हुए भी भारत-वासी भ्रातृप्रेम को एक बार ही तिलाञ्जलि दे दें।

अस्तु, उस कुटिल भ्रातृविरोधी ने अनेक प्रकार महात्मा अर्जुन जी को हानि पहुंचाई। यहां तक कि एक बार उसने उनके पुत्र हरगोविन्द को ज़हर देने की भी चेष्टा की, परन्तु पापी की वह भी चेष्टा विफल हुई। गुरु अर्जुन जी अच्छी प्रकार से जानते थे कि हमारे भाई साहब ही हमारे पीछे पड़े हैं। परन्तु उस सात्विकी-स्वभाव-सम्पन्न उदार चेता महात्मा ने एक घड़ी के लिये भी अपने भाई का बुरा न सोचा, वरन् वे बराबरजगदीश्वरसे पृथ्वीचन्द की मङ्गलकामना किया करते थे।

अकबर की मृत्यु के पीछे जब जहांगीर भारत का सम्राट हुआ तो उसके शाहाज़ादे खुसरो ने इस बात से चिढ़ कर पिता के विरुद्ध विद्रोह खड़ा किया। अन्त को इसी बलवे में उसने अपने प्राण गंवाए। जिस समय विद्रोहियों की पकड़ धकड़ जारी थी, उस समय संदेह करके गुरु अर्जुन जी भी अपने कई साथियों समेत खुसरो के साथ विद्रोह में शामिल होने के अपराध में पकड़ लिए गए श्रोर विशेष कर जहांगीर के एक हिन्दू मन्त्री की कुटिलता से इनपर बड़े बड़े ज़ुल्म किए गए। इन के साथी सभों को सूली दे दी गई श्रोर जब इनके बड़ी निर्दयता से मारे जाने का प्रबन्ध होने लगा तो इन्होंने एक बार रावी में स्नान करने की प्रार्थना की। प्रार्थना स्वीकार होने पर कतिपय रक्षकों के साथ वह रावी स्नान को चले श्रोर अपनी मृत्यु निकट आई जान कर स्नान करती बार उन्होंने ऐसा गोता मारा कि नदीगर्भ में लीन हो गए श्रोर फिर बाहर न निकले। इसी प्रकार से संवत १६६३ साल में महात्मा अर्जुन जी का परलोक बास हुआ।

बेणीप्रसाद।

सरस्वती

सचित्र
मासिक पत्रिका

भाग ३] जुलाई १९०२ ई० [संख्या ८

विविध वार्ता

गत मास की सरस्वती में हम प्रयाग-निवासी बाबू ब्रजमोहनलाल की मृत्यु का समाचार अपने पाठकों को सुना चुके हैं। उस समय तक हमें उनका चित्र नहीं प्राप्त हो सका था इसलिये उसे हम अपने पाठकों की भेंट नहीं कर सके। इस मास की पत्रिका के साथ बाबू ब्रजमोहनलाल का चित्र दिया जाता है जिसके देखने से पाठक जान सकेंगे कि उनकी चाल और रहन कैसी सादी थी और उनके उद्देश्य कैसे सहन और अनुकरणीय थे।

***

प्रान्तिक सरकार की सन् १९००-१९०१ की रिपोर्ट अभी प्रकाशित हुई है, उसमें से मुख्य मुख्य बातें हम नीचे लिखते हैं। इस वर्ष तिब्बत और नैपाल से व्यापार अधिकता से हुआ। गत वर्ष १२५ लाख का माल नैपाल और तिब्बत में बिका था, परन्तु इस वर्ष १३४ लाख का माल बिका। भारतवर्ष से नैपाल को रुई, चीनी, अनाज और मिट्टी का तेल जाया करता है। इस वर्ष अकाल-पीड़ित लोगों के दुख निवारणार्थ ६०,००० रु० सरकारी कोष से व्यय हुआ और २५००० रु० अकाल क्लेश निवारिणी सभा से मिला। ४८०,०६७ मनुष्यों ने रीलीफ में काम किया जिनका व्यय प्रत्येक मनुष्य के हिसाब से =) प्रतिदिन पड़ा। इस वर्ष ९०५० मनुष्य डेमिरारा, फीजी, त्रिनिडाड और मौरिशस (मिरच देश) मज़दूरी करने और रुपया कमाने के लिये भेजे गए।

***

आबकारी से सरकार को इस वर्ष सबसे अधिक आमदनी हुई, अर्थात् ६५१७८१५ रु० की आय हुई जो गत वर्ष से ३८५ लाख अधिक है। देशहितैषियों को इस पर विचार करना चाहिए। शिक्षा में अब लों ये प्रदेश पीछे ही पड़े हैं। गत वर्षों से स्कूलों की संख्या में न्युनता है, परन्तु पढ़ने वालों की संख्या में ७७३२ की अधिकता है। शिक्षा पर इस वर्ष ४५,५५,२५३ रुपया व्यय हुआ। बरेली के जेहलखाने में लड़के-कैदियों के लिये स्कूल स्थापित है, उसका नाम रिफ़ारमेटरी स्कूल है। इस वर्ष यह शिक्षाविभाग में मिला दिया गया और एक योरोपियन सुपरिण्टेण्डेण्ट का पद स्थापित हुआ

है। यह स्कूल चुनार में लाया जायगा। इस वर्ष प्रत्येक बालक पर वार्षिक ५५॥॥)॥ व्यय हुआ। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि इस स्कूल के पढ़े हुए लड़के जेहलख़ाना छोड़ कर वही रोज़गार करते हैं, जो उन्हें सिखाया जाता है और आशा है कि बहुत शीघ्र बदमाशों की संख्या कम हो जायगी। [illegible] यहां अपनी सरकार को हृदय से धन्यवाद [illegible] हैं कि जिसने इस प्रबन्ध से न केवल उन [illegible]ड़कों के जीवन सुधारने का उपाय किया कि [illegible] अन्यथा ठग और जुआरी होते, वरञ्च हमारे [illegible]ाजसुधारकों को यह उपदेश दिया कि देखो तुम [illegible]ा केवल वर्ष में एक दिन सोशल कान्फरन्स कर लेते हो, फिर रुपया कमाने ही की धुन में तुम्हारा समय नष्ट होता है। प्रत्येक दिन तुम देखते हो कि महन्त और साधु छोटे छोटे नाबालिग लड़कों को गोद लेकर उन्हें भीख मांगना सिखाते हैं, पर तुम्हें इससे क्या मतलब, तुम हर एक सुधार की आशा सरकार ही से रखते हो। यह विचार करने की बात है कि जो लड़के किसी अनाथालय अथवा फ़्रीस्कूल में जाकर व्यापारी, बुद्धिमान और सज्जन होते व इन साधुओं के हाथों में जो स्वयं कुए में गिर कर औरों को भी खींचते हैं, पड़कर बदमाश लुच्चे और आलसी होंगे! और फिर नाबालिग बच्चों पर साधुओं का अधिकार कैसा?

* * *

स्त्री शिक्षा अब तक पादरियों ही के हाथों में है, पर सरकारी मदर्सों में भी पढ़नेवालियों की अधिकता होती जाती है। हर्ष की बात है कि सरकार ने लखनऊ में एक पाठशाला खोलने का प्रबन्ध किया है जहां की पढ़ी हुई लड़कियां कन्या पाठशालाओं में अध्यापिका हुआ करेंगी। इसके लिये बहुत सा पुरष्कार और वृत्ति भी मिलेगी।

* * *

बनारस में ९९०१९ रु० नलों के बनाने में खरच हुआ। मसूरी में पानी की कल का बनाना निश्चय हुआ। टीका लगाने की प्रथा सर्वप्रिय हो चली है।

* * *

इन प्रान्तों में ४ पागलख़ाने हैं—बरेली, बनारस, आगरा और लखनऊ। सरकार की इच्छा है कि आगरे में योरोपियन पागलों के लिये सदर पागलख़ाना बनवादे। देखा गया है कि हिन्दुस्तानी पागलों में अधिक लोग गांजा पीने के कारण सौदाई हुए हैं, इन पागलख़ानों में ८१५४८ रु० ख़र्च हुए जिसमें से अङ्गरेज़ों ने योरोपियन लोगों के लिये २३८९ रु० आपस में चन्दे से दिया। पागल लोगों की मेहनत से ३०३६ रु० का मुनाफ़ा हुआ।

अस्पतालों से ३६३३१७० मनुष्यों को दवा मिली। कुल अस्पताल ४८४ हैं जिनमें ७३४६०१ रु० ख़र्च हुआ।

रिपोर्ट में लिखा है कि डिस्ट्रिक्टबोर्ड्स में लोग अब अधिक अनुराग प्रगट करते हैं। हमें अभी इसमें सन्देह है।

आगरा, अलीगढ़, मैनपुरी, एटा, फ़तहगढ़ और मेरठ में डकैती अधिक हुई।

पुलिस को दुरुस्त करने के लिये प्रान्तिक सरकार ने प्रस्ताव किया है कि १ डिप्टी इन्सपेक्टर जेनरल और हो। १४ असिस्टेन्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट, १७ इन्सपेक्टर और एक डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट जो हिन्दुस्तानी हों नियत किए जांय।

मैनपुरी, इटावा, फ़र्रुख़ाबाद में अब तक लोग अपनी लड़कियों को मार डालते हैं।

जेहलख़ाने में २८७६७ कैदी थे। गत वर्ष २७४३९ थे। इनमें से ४९०५ कई बेर कैद हो चुके हैं। ३१६७ अपील करने पर छोड़ दिए गए, २४५६० मियाद पूरी होने पर और ८१२८ नेकचलनी पर छोड़े गए। ८ कैदी भागे जिनमें से ६ पकड़े गए।

हिन्दी ग्रन्थों में अधिक उपन्यास छपे। "भयानक भ्रमण" जो बेलून पर से अफ़्रिका का भ्रमण है, एक अङ्गरेज़ी पुस्तक का अनुवाद है। स्त्रीशिक्षा पर दो ग्रन्थ हैं—"पतिव्रतधर्मप्रकाश" जो मेरठ

स्वामीप्रेस में छपा है और "स्त्रीधर्मप्रकाश" जिसको पेशावर के काशीराम बर्म्मा ने रचा है। इनके अतिरिक्त कई ग्रन्थों के नाम हैं। सरस्वती की हिन्दी को कठिन हिन्दी लिखा है। अङ्गरेज़ी ग्रन्थों की आलोचना करते हुए गवर्नमेन्ट ने लाला बैजनाथ की बनाई "Hinduism" की प्रशंसा की है और भूल से उन्हें कायस्थ समझ लिया है। हिन्दी पत्रों में भारतजीवन और राजदूत का सबसे अधिक प्रचार है। हमें हर्ष है कि जनसंख्या के समय लोगों का यह यत्न कि किसी प्रकार उर्दू अथवा हिन्दी जाननेवालों की संख्या अधिक हो जाय सरकार पर भी प्रकट हो गया। हमें हर्ष इसलिये है कि हिन्दी जाननेवालों को तो जन संख्या के समय झूठी कार्रवाई करने की कोई आवश्यकता ही नहीं थी। हां, जिन्होंने कोलाहल अधिक मचाया, जिन्होंने सर एंटनी को झूठा बनाया, जिसके कारण उक्त महोदय को स्वयं एक पत्र पञ्जाब के एक प्रसिद्ध पत्र को लिखना पड़ा, उन्हींसे डर था। रिपोर्ट के शब्द ये हैं—

The approaching census operations led to a controversy in the Press between Hindu and Muhammadan journalists, the former asserting that the advocates of Urdu would take advantage of the census to manipulate the returns in favour of an Urdu majority of Urdu-knowing persons and the converse argument being raised by their opponents. One paper contended that there was only one language spoken in the provinces by whatever name it might be called and suggested, that in order to avoid any manipulation of the figures, either the language column should be identical with that of the last census or that the two languages should be strictly and distinctly defined. Another observed that the distinction of sect played an important part in the fabric of native society and insisted that the sect to which every person belonged should be ascertained and recorded in the schedules.

* *
*

युनान के किसी बादशाह ने अपने बुद्धिमान मन्त्री से पूछा था कि क्या यह सम्भव है कि मेरे राज्य में बसनेवालों की संख्या मालूम होजाय! मन्त्री ने बहुत विचार कर नैराश्य प्रगट किया। जो बात युनान के एक छोटे से राज्य में बुद्धिमानों ने असम्भव समझी थी, विशाल अङ्गरेजी राज्य में वह सम्भव हो गई। विचारा युनानी बादशाह केवल जनसंख्या जानने में सफलीभूत न हुआ, अङ्गरेज़ी राज्य में प्रत्येक दसवें वर्ष जो जनसंख्या होती है उसमें विद्या, स्वास्थ्य, व्यापार, धर्म सम्बन्धी आदि अनेक विषयों पर अनुसन्धान होता है। सच तो यह है कि यदि किसी देश की उन्नति अथवा अवनति के विषय में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना हो तो मनुष्यगणना की रिपोर्ट से बढ़ कर सहायता और किसीसे नहीं मिलसकती। इस बेर की रिपोर्ट से हमें यह देख कर बड़ा खेद हुआ कि हिन्दुओं की संख्या गत दस वर्ष में ६१३४४७ न्यून हो गई। इसका कारण लोग अकाल और प्लेग बतलाते हैं, पर जब हम और जातियों की संख्या में वृद्धि देखते हैं तो हमें इसका कारण प्लेग और अकाल नहीं मालूम होता। यदि प्लेग और अकाल ही इसका कारण होता तो मुसलमान, ईसाई इत्यादि सबकी संख्या घटती; परन्तु नहीं। सिवाय हिन्दु और जैनों के और किसीकी संख्या नहीं घटी। प्रिय हिन्दुओ, अब विचारने का समय है। अब तक हम आप घमंड के उमंग में आकर कहा करते थे कि बौद्धों, मुसलमानों, ईसाइयों, सबने हमारे धर्म पर आघात किए, पर हमारा धर्म अटल है। अब हिसाब लगाइए कि दस वर्ष में ६ लाख

से अधिक हिन्दू न्यून हुए तो कितने वर्ष तक हम में ऐसे लोग और रह सकते हैं जो "हमारा धर्म अटल है" की ध्वनी दे सकते हैं! एक ऐसे गृह की कल्पना करो कि जिसमें अन्दर जाने का रास्ता तो बन्द हो और बाहर आने के कई रास्ते हों और उसमें से जो बाहर आता है फिर अन्दर नहीं जा सकता, ऐसी अवस्था में कदापि सम्भव नहीं कि एक दिन ऐसा न आवे कि वह गृह खाली होजाय! क्या यही दशा हिन्दूधर्म की नहीं हैं! अकाल आया कुछ कङ्गले हिन्दू मरे, इनके लड़के भूख के मारे भटकते हुए उद्दार और दयावान पादरियों के हाथ आए और ईसाई हो गए, अथवा किसी हिन्दू बालक ने भूल चूक कर किसी अन्य धर्मावलम्बी के साथ खालिया, हुक्का पानी बन्द! हिन्दु समाज के नायकों को इन बातों पर विचार करना चाहिए और ऐसे उपाय सोचने चाहिए जिसमें हिन्दूधर्म्म की जड़ दिनोदिन दृढ़ होती चली जाय और ऐसा न हो कि उसके माननेवालों की संख्या प्रतिदिन घटती जाय।

***

इस मास की पत्रिका के साथ हम राजा रवि वर्म्मा कृत 'शकुन्तला जन्म' के चित्र की प्रतिलिपि देते हैं। राजा रविवर्म्मा के मनोहर और सुन्दर चित्रों में से यह भी एक है। इस चित्र में मेनका, शिशु शकुन्तला और वृद्ध ऋषि विश्वामित्र के चेहरों का भाव बड़ी ही सुन्दरता से चित्रित किया गया है। पाठक चित्र को ध्यानपूर्वक देख कर इन भावों को हृदयङ्गम कर सकते हैं। राजा रविवर्म्मा के चित्रों का मूल्य यद्यपि अधिक नहीं है, पर प्रत्येक पुरुष की सामर्थ्य के बाहर यह बात है कि वह सब चित्रों को खरीद सके और तिसपर से बहुत से चित्र ऐसे हैं जिन्हें बड़े राजा महाराजों ने खरीद लिया है और जिनका देखना भी अब, गिने चुने लोगों को छोड़ कर असम्भव है। इस लिये हमने उन चित्रों को सरस्वती के साथ प्रकाशित किया। अभी और कई चित्र बाकी हैं जिन्हें हम समय समय पर सरस्वती में प्रकाशित करते रहेंगे।

***

हमें भारतभ्रमण नामक पुस्तक का पहिला और दूसरा भाग प्राप्त हुआ है। चरजपुरानिवासी बाबू साधुचरण प्रसाद ने पांच बेर यात्रा करके भारत वर्ष के प्रायः समस्त प्रसिद्ध प्रसिद्ध नगरों के स्थानों को देखा। इन्हीं यात्राओं का वृत्तान्त उन्होंने लिपिबद्ध करना विचारा है। यह पुस्तक पांच भागों में विभाजित होगी, जिनमें पहिले दो भाग छपकर अभी प्रकाशित हुए हैं—तीन भाग शेष हैं। प्रथम भाग में लग भग १०० पृष्ठ की भूमिका और ३३२ पृष्ठों में मूल ग्रन्थ है, जिसमें स्थान स्थान पर सुन्दर सुन्दर चित्र दिए हैं। इस भाग में संयुक्तप्रदेश, मध्यभारत, राज पुताना, अजमेर और मध्यप्रदेश के नगरों का वर्णन है। दूसरा खण्ड ५६० पृष्ठों का है और इसमें संयुक्त प्रदेश, अवध, पंजाब और सिन्ध के नगरों का वर्णन है। हिन्दी में यह पुस्तक अपूर्व निकली है। इतनी बड़ी यात्रा अब तक कोई नहीं छपी थी। पुस्तक लिखने के ढंग और भाषा आदि के विषय में कोई बात त्रुटि की नहीं है कि जिसके विषय में कुछ कहा जाय। ऐसे पुस्तकों के छपने से हिन्दी भाषा का गैारव है और हम ग्रन्थकर्ता को धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने ऐसी पुस्तक के लिखने और छपवाने का उद्योग और साहस किया। यद्यपि ग्रन्थकर्ता ने यात्रा आठ वर्ष पूर्व की थी और उसी समय का वृत्तान्त उसमें लिखा है जिस से आधुनिक स्थिति में कहीं कहीं बहुत भेद पड़ गया है, तथापि ग्रंथ में बहुत सी बातें ऐसी हैं जो सदा के लिये उपयोगी होंगी। हमें यह प्रकाशित करते दुःख होता है कि ग्रन्थकर्ता ने अपनी सम्मति अथवा अपने मन की भावनाओं को कहीं भी स्थान नहीं दिया, जिससे उनके विषय में हमें कहीं भी कुछ पता नहीं लगता और पढ़नेवालों को किसी प्रकार